जून
2024

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष 88 | अंक-6 | प्रति - ₹ 25 | ₹-300 वार्षिक

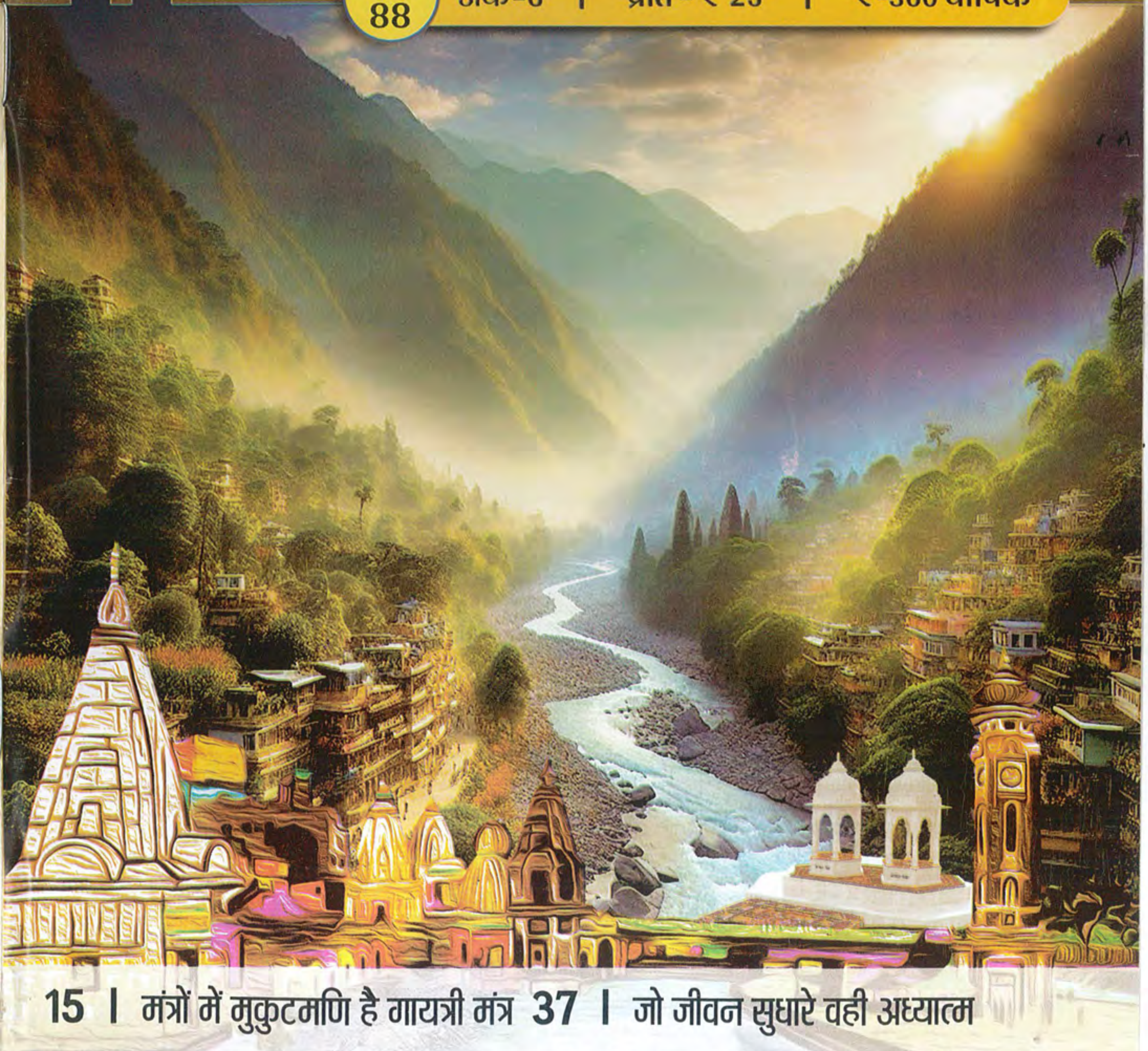

15 | मंत्रों में मुकुटमणि है गायत्री मंत्र
37 | जो जीवन सुधारे वही अध्यात्म
24 | अपनी राह चला लो गुरुवर
50 | संन्यास के अर्थ हरेक के लिए अलग

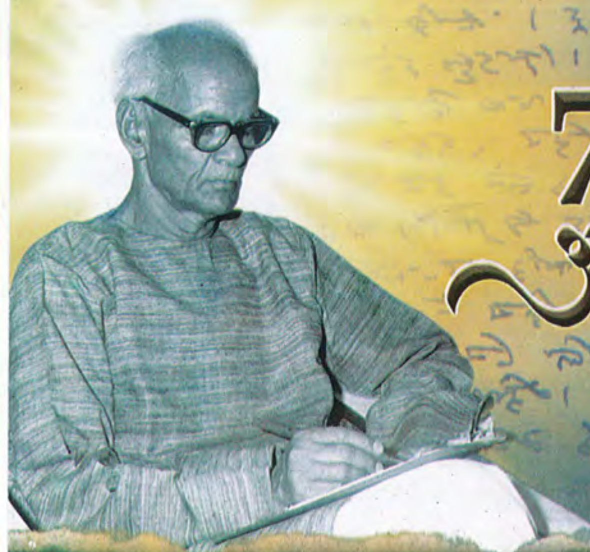

75 वर्ष पूर्व अखण्ड ज्योति

जून –1949

(पृष्ठ - 2)

जागते रहिए! सावधान रहिए!!

क्रियापद्धति के साथ पूरी दिलचस्पी को न जोड़ना जाग्रत तंद्रा का प्रमुख चिह्न है। इस अवस्था में किए हुए कार्यों का ठीक प्रकार पूरा होना असंभव है। जिस वक्त कोई व्यक्ति झपकियाँ ले रहा हो,उस समय उसे एक रेखागणित का प्रश्न हल करने को दिया जाए तो वह उसे सही रूप से हल न कर सकेगा;इसी प्रकार जो आधे मन से, अर्द्धजाग्रत अवस्था में कार्य करता है,वह अपने सामने रखे हुए कार्यों को भली प्रकार पूरा न कर सकेगा। इस प्रकार की अधूरे मन के साथ की हुई कार्य-प्रणाली को लापरवाही, असावधानी, आलस्य एवं प्रमाद कहा जाता है।

हर काम को सफल बनाने के लिए दो बातों का ध्यान रखना पड़ता है एक यह कि "इस कार्य को उत्तमता के साथ पूरा किया जाए", दूसरा यह कि "कहीं यह कार्य खराब न हो जाए"।सफलता का लोभ और असफलता का भय–इन दोनों वृत्तियों का समन्वय ही जागरूकता है। जैसे गरम (पॉजिटिव) और ठंढे (नेगेटिव) तारों के मिलने से बिजली की धारा का संचार होता है,वैसे ही उपरोक्त लोभ और भय का ध्यान रखने से मानसिक जागरूकता उत्पन्न होती है।यह जागरूकता सतेज होकर शरीर और मस्तिष्क की काम करने वाली शक्तियों को संगठित और संयोजित करके सुव्यवस्थित रूप से कार्य में प्रवृत्त करती है,तब वह कार्य सफल हो जाता है।

परंतु जब मनुष्य असफलता की लज्जा को भूल जाता है और सफलता के गौरव की उपेक्षा करता है,तब उस जागरूकता रूपी विद्युतशक्ति का संचार नहीं होता। नाड़ियाँ शिथिल पड़ जाती हैं। कार्यकारिणी शक्ति मंद हो जाती है। सामने पड़ा हुआ काम पर्वत के समान भारी प्रतीत होता है। उसे करते हुए मन में स्फूर्ति नहीं उठती,वरन बेगार के भार की तरह झुँझलाते हुए उसे किया जाता है। जब उस कार्य में रस नहीं आता तो उसके बिगाड़-सुधार की बारीकियों की ओर भी मन नहीं जाता। फलस्वरूप कार्यकाल में वे बातें सूझ नहीं पड़तीं कि कहाँ बिगाड़ करने वाली भूल हो रही है और क्या सुधार करने वाली गतिविधि छूटी जा रही है।

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	88
अंक	:	06
जून	:	2024
ज्येष्ठ-आषाढ़	:	2081
प्रकाशन तिथि	:	01.05.2024

वार्षिक चंदा

भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

अखण्ड ज्योति-आत्मज्योति

अखण्ड ज्योति—अखंड दीप का प्रकाश बन प्रज्वलित हुई। महासाधक-महाशिष्य की आत्मज्योति इसी से एकाकार हो गई। अंतरिक्ष का अनंत प्रकाश जो ब्रह्मवेला में उस प्रथम दिवस ज्योतिर्मय गुरुरूप में प्रकट हुआ, उसकी सिद्ध ज्योति भी इसी में समा गई। अब यह अखण्ड ज्योति ही महासाधक की आत्मज्योति थी। यही परम गुरु की सिद्ध ज्योति भी थी। अखंड रूप से उस प्रातःवेला में प्रकाशित-प्रज्वलित हुआ यह अखंड दीप—इसकी अखण्ड ज्योति सदा के लिए तीन स्थानों पर ज्योतिर्मान हो गई।

यह पूजास्थली पर अखंड दीप की अखण्ड ज्योति बनी। इसके सान्निध्य में साधनारत साधक के हृदय में यही चिरप्रकाशित आत्मज्योति बनकर और भी प्रखर हो गई। अंतरिक्ष के अनंत प्रकाश में तपनिरत ज्योतिर्मय परम गुरुदेव की चेतना की सिद्धज्योति भी यही थी। ये तीनों सदा-ही-सदा के लिए एक थे और एकीकृत रूप से इनकी प्रकाश प्रदीप्ति समान रूप से तीनों स्थानों पर सदा के लिए प्रकाशित होने लगी। प्रतिदिन की साधना में इस प्रज्ञा ज्योति में प्रकाश-प्राण व प्रेरणाओं का समागम होता रहता। अखंड दीप की अखण्ड ज्योति अभी भी शांतिकुंज में प्रकाशित है। तब से अब तक उसकी स्थिति यथावत् है। उस चैतन्य ज्योति में अभी भी गुरुदेव-माताजी की आत्मज्योति एवं परम गुरुदेव की सिद्धज्योति समाहित है। जिनके पास ग्रहण-धारण व आत्मसात् करने की सामर्थ्य है, उनके लिए इसमें से अभी भी प्रकाश, प्राण व प्रेरणाएँ प्रवाहित हो रही हैं। अखण्ड ज्योति का आत्मज्योति स्वरूप सदा-से-सदा तक असंख्य-अनगिनत आत्माओं को ज्योतिर्मय करने में समर्थ है। ❑

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विषय सूची

- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- अखण्ड ज्योति—आत्मज्योति 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  इनसान को गुलाम बनाता सोशल मीडिया 5
- आत्मानम् विद्धि: 8
- संत न होते जगत् में, जल जाता संसार 11
- शाश्वत सुख का राजमार्ग 13
- मंत्रों में मुकुटमणि है गायत्री मंत्र 15
- **पर्व विशेष—गायत्री जयंती**
  पुनातु माम् तत्सवितुर्वरेण्यं 19
- सबसे बड़ा धन—संतोष धन 22
- अपनी राह चला लो गुरुवर 24
- सकारात्मक मन:स्थिति की ओर बढ़ें 26
- आचार्य शंकर की गोमुखयात्रा 29
- अंतर्मन में चलता देवासुर संग्राम 32
- गीता में ध्यानयोग के साधना सूत्र 35
- जो जीवन सुधारे, वही है अध्यात्म 37
- पक्षियों के घरौंदों का रोचक संसार 39
- गायत्री मंत्र : हमारी आत्मा का मंत्र 42
- **पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा—21**
  सिद्धियों और विभूतियों का राजमार्ग—आत्मशोधन 44
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—182**
  भारतीय समाचारपत्रों पर शोध 46
- **युगगीता—289**
  संन्यास के अर्थ हरेक के लिए अलग 50
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  प्रायश्चित का पर्व (प्रथम किस्त) 52
- **विश्वविद्यालय परिसर से—228**
  उत्सव के रंग में रँगा विश्वविद्यालय 56
- **साधना शताब्दी—विशिष्ट लेखमाला**
  बाह्य जगत् में प्रकाश 59
- **अपनों से अपनी बात**
  सांस्कृतिक पुनरुत्थान हेतु निभाएँ युगधर्म 62
- अखण्ड दीप की जन्म शताब्दी (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

देवात्मा हिमालय की गोद में शांतिकुंज

जून-जुलाई, 2024 के पर्व-त्योहार

रविवार	02 जून	अपरा एकादशी 'स्मा.'	मंगलवार	02 जुलाई	योगिनी एकादशी
गुरुवार	06 जून	वट सावित्री व्रत	रविवार	07 जुलाई	रथयात्रा
बुधवार	12 जून	सूर्य षष्ठी	शुक्रवार	12 जुलाई	सूर्य षष्ठी
रविवार	16 जून	गायत्री जयंती/ परमपूज्य गुरुदेव महाप्रयाण दिवस	बुधवार	17 जुलाई	देवशयनी एकादशी/ मुहर्रम
सोमवार	17 जून	निर्जला एकादशी/ईदुज्जुहा	रविवार	21 जुलाई	गुरु पूर्णिमा
शनिवार	22 जून	कबीर जयंती	बुधवार	31 जुलाई	कामिका एकादशी

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

इनसान को गुलाम बनाता सोशल मीडिया

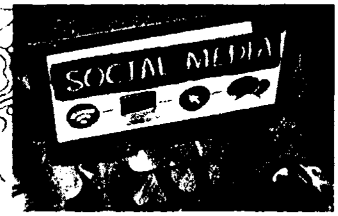

सोशल मीडिया आज जनजीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। क्या बच्चे और क्या बूढ़े, युवा-प्रौढ़ तथा स्त्री-पुरुष, सभी इसमें दिन का पर्याप्त समय बिताते देखे जा सकते हैं। यह सत्य है कि पहले जहाँ लोगों से जुड़ना कठिन होता था तो वहीं आज एक क्लिक के साथ हजारों लोगों से एक साथ जुड़ना संभव हो गया है।

इस माने में सोशल मीडिया का नाम सार्थक दिखता है, लेकिन साथ ही अधिकांश उपभोक्ता, जो इसकी लत के शिकार हो रहे हैं, वे स्वयं के साथ परिवार-समाज से भी कटते जा रहे हैं। ऐसे में सोशल मीडिया के चलते लोग असामाजिक अधिक होते जा रहे हैं। साथ ही वे नाना प्रकार के मनोविकारों के शिकार हो रहे हैं तथा परिवार व समाज के लिए चिंता का विषय बनते जा रहे हैं।

आज हम निस्संदेह रूप में कंप्यूटर और स्मार्टफोन के युग में जी रहे हैं, कृत्रिम बुद्धि ने इसमें नए आयाम जोड़ दिए हैं। जीवन के ये सब अभिन्न अंग बनते जा रहे हैं। जीवन को सरल बनाने में इनके महत्त्व को देखते हुए हम इनके महिमामंडन में भी पीछे नहीं रहते, लेकिन इनकी लत ने इनसान को गुलाम भी बना दिया है।

सोशल मीडिया पर घंटों स्क्रॉल करते बीत जाना, बार-बार मोबाइल को चेक करना, मोबाइल के बिना बेचैनी अनुभव करना—ये सभी लक्षण मोबाइल की लत के हैं, जो हमारी कार्य की उत्पादकता को तो प्रभावित कर रहे हैं, साथ ही हमारे आपसी संबंधों पर भी नकारात्मक प्रभाव डाल रहे हैं। इनसे मानसिक स्वास्थ्य बुरी तरह से प्रभावित हो रहा है। सोशल मीडिया के साथ एकदूसरे से आगे बढ़ने की होड़, जलन, स्वयं पर आत्मविश्वास खोना, बेचैनी, तनाव और अवसाद जैसी समस्याएँ भी आम होती जा रही हैं।

कुछ दशक पूर्व विश्व जहाँ व्यापक विनाश के हथियारों की चुनौती से जूझ रहा था तो वहीं आज सोशल मीडिया ध्यान भटकाने वाला एक घातक हथियार बन चुका है। सोशल मीडिया से जुड़े एक घटनाक्रम में सुनवाई करते हुए, पिछले दिनों मुंबई हाईकोर्ट की गोवा पीठ के न्यायाधीश महोदय ने कहा—"सोशल मीडिया बड़े पैमाने पर ध्यान भटकाने का घातक हथियार बन चुका है। चिंता का विषय है कि इससे निपटने के लिए अभी तक कोई ठोस प्रयास नहीं हुए हैं। इसमें भ्रामक सूचनाओं की भरमार है तथा इनसे बचने के उपाय खोजने की आवश्यकता है। उन्होंने यहाँ तक कहा कि गलत जानकारी से बेहतर है कि भ्रामक समाचारों को न देखकर या न सुनकर, मुद्दों से अनजान ही रहा जाए।"

वे आगे बोले कि सोशल मीडिया एवं आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस के युग में हमें अपनी सोचने की क्षमता को कमजोर नहीं करना चाहिए, अन्यथा एक इनसान और एक मशीन के बीच कोई विशेष अंतर नहीं रह जाएगा। कृत्रिम बुद्धिमत्ता की अपनी विशेषताएँ हो सकती हैं, लेकिन देश-दुनिया में इससे दुःखद कुछ नहीं होगा कि हम अपनी

सोचने की क्षमता, बुद्धिमत्ता और संवेदनशीलता तक को किसी मशीन या कंप्यूटर एल्गोरिथम के हवाले कर दें।

इसी दौरान अमेरिका का घटनाक्रम सोशल मीडिया के गंभीर खतरों की चिंता को स्पष्ट करता है—जहाँ इसकी लत के चलते बच्चों का जीवन बरबाद हो रहा है। यहाँ तक कि बड़े भी इससे नहीं बच पा रहे, जबकि बच्चों पर इसका प्रभाव अधिक खतरनाक स्तर तक पहुँच चुका है।

इस कारण अमेरिका के 50 में से 41 राज्यों ने अपने बच्चों को सोशल मीडिया की लत से बचाने के लिए फेसबुक, इंस्टाग्राम, व्हाट्सअप की मालिकाना कंपनी मेटा प्लेटफॉर्म्स के विरुद्ध केस दर्ज कर दिया है। आरोप हैं कि मेटा ने जान-बूझकर ऐसे फीचर्स तैयार किए हैं, जो बच्चों व किशोरों को इसकी लत लगा रहे हैं। बड़े भी इससे बच नहीं पा रहे हैं। मेटा उनकी कमजोरी का अपने मुनाफे के लिए फायदा उठा रही है।

किशोरों की मस्तिष्कीय या मानसिक संरचना ऐसी होती है कि वे सामाजिक तौर पर जुड़े रहना चाहते हैं। सोशल मीडिया इसका अवसर देता है। यहाँ न केवल संपर्क, बल्कि लाइक्स व प्रतिक्रियाएँ भी मिलती हैं। मनोचिकित्सक डेविड ग्रीनफील्ड, मेटा जैसी कंपनियों की शक्तिशाली तकनीक, इंटरमिटनरी-इन्फोर्समेंट का जिक्र करते हुए कहते हैं कि यह उपभोक्ताओं को बताती है कि पोस्ट किए गए कमेंट्स, तस्वीरों, वीडियो के लिए उन्हें दूसरे लोगों से लाइक्स व प्रतिक्रियाएँ मिलेंगी, जो उनका इनाम होंगी, लेकिन यह कब मिलेगा—यह तय नहीं होता।

यह इनाम का लालच ही उनको ऐसी लत लगाता है। यह कुछ-कुछ जुआघर में लगी मशीनों जैसा है, जिनमें रंग-बिरंगी लाइटें होती हैं, संगीत बजता है और कुछ पाने की संभावना अर्थात इनाम का लालच होता है। यह तकनीक उपभोक्ताओं को सोशल मीडिया से चिपकाए रहती है। इससे बड़े तक नहीं बच पाते, जबकि बच्चों व किशोरों की स्थिति अधिक जोखिम में है।

इस तरह इंटरनेट सामग्री मादक पदार्थ जैसी है। कई मामलों में सोशल मीडिया व इंटरनेट के कारण बच्चों की पढ़ाई, स्कूल, नींद तक प्रभावित हो रहे हैं।

सोशल मीडिया पर कुछ लोग दूसरों के अधिक फॉलोअर्स और अपनी पोस्ट पर कम कमेंट्स और लाइक्स के चलते अवसादग्रस्त हो रहे हैं। अनिद्रा से लेकर सरदरद के शिकार हो रहे हैं।

लगातार मोबाइल की स्क्रीन पर टकटकी लगाकर देखने से अनेकों को सरदरद से लेकर थकान की समस्या घर कर रही है। थोड़ी देर तक मोबाइल देखने पर इनकी आँखों में पानी आने लगता है। आश्चर्य नहीं कि आज कम आयु में चश्मे लग रहे हैं। लगातार घंटों गलत ढंग से बैठने पर शरीर का संतुलन भी बिगड़ जाता है, जिसके चलते गरदन और कमर दरद की समस्याएँ आम होती जा रही हैं।

सोशल मीडिया की इस लत से बाहर निकलने के लिए पहले यह अनुभव आवश्यक है कि यह जीवन की एक समस्या बन चुका है तथा इससे बाहर निकलना है। मालिक की तरह इसका उपयोग करना है, न कि गुलाम की तरह। साथ ही सबसे पहले उन कारणों पर ध्यान दें, जिनके कारण आपको बार-बार मोबाइल को छूने की तलब उठती है। इसके साथ सोशल मीडिया के उपयोग का समय निर्धारित करें कि किस समय व कितनी देर इसका उपयोग करना है।

इससे इसकी लत पर नियंत्रण करने में काफी सीमा तक सहायता मिलेगी। इससे अपने कार्यों में मन को एकाग्र करना सरल होगा। सोते समय मोबाइल को पास न रखें। इससे एक तो आप स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाली इसकी हानिकारक किरणों से बचेंगे, साथ ही इससे सोशल मीडिया का सीमित उपयोग संभव हो पाएगा। ऐसे में प्रात: उठने पर मोबाइल से दिन के शुरुआत की आदत भी नहीं पनपेगी।

इसके साथ अपनी पसंद के कार्यों में स्वयं को व्यस्त रखें। अपने आत्मीय मित्रों व रिश्तेदारों से सोशल मीडिया के बजाय व्यक्तिगत रूप से मिलें और सदा याद रखें कि आप सोशल मीडिया या मोबाइल के गुलाम नहीं हैं, आपके जीवन की सुख-शांति को छीनने का इसको कोई अधिकार नहीं है तथा आपको मालिक की तरह इसका उपयोग करना है।

❑

देवगुरु आचार्य बृहस्पति के पुत्र कच को ब्रह्मसाक्षात्कार करने की इच्छा हुई। इसके लिए वह वन में जाकर तप करने लगा। वर्षों बीत गए। एक दिन आचार्य उसे देखने वन में गए। वहाँ उन्होंने देखा कि कच बहुत ही कम आहार लेता था।

बृहस्पति ने उससे पूछा—"पुत्र! तुमने तप करके क्या पाया?" कच बोला—"पिताजी! मैंने सारे सुखों का त्याग कर दिया है, फिर भी मुझे ब्रह्मसाक्षात्कार नहीं हुआ।"

इस पर बृहस्पति ने कहा—"पुत्र! सर्वत्याग करने से तप सफल होगा।" अब कच ने सभी वस्त्रों व भोजन का पूर्ण त्याग कर दिया और कड़ी तपस्या में जुट गया।

कुछ वर्षों पश्चात बृहस्पति उससे मिलने पहुँचे। पूछने पर इस बार भी कच ने पहले वाला ही उत्तर दिया। इस पर आचार्य बृहस्पति ने उसे समझाते हुए कहा—"पुत्र! सर्वत्याग का अर्थ न तो वस्त्र उतार देना है और न ही आहार छोड़ देना है। तुम शारीरिक तप तो कर रहे हो, परंतु आंतरिक तप अभी भी नहीं हो पा रहा है। सर्वत्याग का अर्थ अपने अहंकार को त्याग देना है। तुम्हें ब्रह्म को पाने के लिए अहं को त्यागना पड़ेगा। वर्तमान में तुम्हें अपने जिस त्याग पर अभिमान है और जिस इंद्रियदमन को तुम तप समझ रहे हो, वही तुम्हारी साधना की सफलता में अब बाधा बन रहा है।"

कच को उनका कहा समझ में आ गया और वह अहंकार त्यागकर भक्तिभाव से साधना में रत हो गया। ऐसा करते ही उसे ब्रह्मसाक्षात्कार हो गया।

आत्मानम् विद्धि:

भारतीय संस्कृति की कई विशिष्टताओं में केंद्रीय विशेषता है—आत्मज्ञान, जिसे भारतीय चिंतन में सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है। वैदिक ऋषियों का आदेश रहा है कि **आत्मानम् विद्धि:** अर्थात पहले स्वयं को जानो। आश्चर्य नहीं कि परमपूज्य गुरुदेव की पहली पुस्तक—मैं क्या हूँ, आत्मज्ञान पर आधारित पुस्तक ही थी।

प्रज्ञायोग की जीवन-साधना के अंतर्गत दिवस के शुभारंभ को गुरुदेव ने आत्मबोध के साथ करने का प्रावधान रखा, जो आत्मज्ञान के महत्त्व को ही प्रतिपादित करता है। गायत्री तीर्थ शांतिकुंज में स्थित भटका हुआ देवता का मंदिर इसी आत्मज्ञान के रूप में अपने वास्तविक स्वरूप के बोध की एक सुविचारित उपासना-साधना व्यवस्था है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में ऋषि याज्ञवल्क्य और उनकी पत्नी मैत्रेयी के मध्य का संवाद आत्मज्ञान की सर्वोत्कृष्टता का सुंदर प्रतिपादन करता है। जब ऋषि याज्ञवल्क्य गृहस्थ आश्रम छोड़कर वानप्रस्थ के लिए विचार करते हैं तो दोनों पत्नियों मैत्रेयी और कात्यायनी के समक्ष अपनी संपत्ति को बराबर हिस्से में बाँटने का प्रस्ताव रखते हैं।

कात्यायनी प्रस्ताव को स्वीकार कर लेती हैं, लेकिन अध्यात्म-पिपासु मैत्रेयी जानती थी कि धन-संपदा से आत्मज्ञान नहीं खरीदा जा सकता है। मैत्रेयी अपने पति से पूछती हैं—"हे स्वामी! यदि समस्त संसार और इसकी संपदा मुझे मिल जाए तो क्या मुझे आत्मतत्त्व प्राप्त हो जाएगा।"

ऋषि याज्ञवल्क्य का उत्तर था—"नहीं, निश्चिय ही नहीं। संपदा मिलने पर तुम्हारा जीवन वैसे ही व्यतीत होगा, जैसे साधनसंपन्न व्यक्तियों का होता है, लेकिन इससे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती।" तो मैत्रेयी का प्रश्न था—"जिस धन से मैं अमर नहीं हो सकती, उसको पाकर मैं क्या करूँगी (**येनाहं नामृता स्याम् किमहं तेन कुर्याम्?**) आप यदि अमर होने का साधन जानते हैं तो कृपया मुझे उसका मार्गदर्शन कीजिए।"

तब ऋषि याज्ञवल्क्य अमृततत्त्व की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि पति की कामना के लिए पत्नी को पति प्रिय नहीं होता, अपितु आत्मा की प्रसन्नता के लिए पति प्रिय होता है। पत्नी की कामना के लिए पति को पत्नी प्रिय नहीं होती, अपितु आत्मा की प्रसन्नता के लिए पत्नी प्रिय होती है। पुत्रों की कामना के लिए पुत्र प्रिय नहीं होते, अपितु आत्मा की प्रसन्नता के लिए पुत्र प्रिय होते हैं।

धन के लिए धन प्यारा नहीं होता, अपितु आत्मा की प्रसन्नता के लिए धन प्यारा होता है। ज्ञान के लिए ज्ञान प्यारा नहीं होता, अपितु आत्मा की प्रसन्नता के लिए ज्ञान प्यारा होता है। शक्ति के लिए शक्ति प्रिय नहीं होती, अपितु आत्मा की प्रसन्नता के लिए शक्ति प्रिय होती है। लोकों के लिए लोक प्रिय नहीं होते, अपितु आत्मा की प्रसन्नता के लिए लोक प्रिय होते हैं। देवों के लिए विद्वान प्रिय नहीं होते, अपितु आत्मा की प्रसन्नता के लिए देव प्रिय होते हैं। प्राणियों के लिए प्राणी प्रिय नहीं होते, अपितु आत्मा की प्रसन्नता के लिए प्राणी प्रिय होते हैं।

अत: सबकी प्रसन्नता के लिए सब प्रिय नहीं होते, अपितु आत्मा की प्रसन्नता के लिए सब प्रिय होते हैं। जिस आत्मा के लिए यह सब प्रिय होता है, निस्संदेह वह आत्मा ही देखने और सुनने योग्य है, मनन करने योग्य और अंत में अनुभव करने योग्य है।

इस तरह निस्संदेह रूप में आत्मा ही वह धुरी है, जिसके चारों ओर मेरा पति, मेरी पत्नी, मेरे माता-पिता, मेरा मित्र, मेरी संपत्ति, मेरा धन इत्यादि मनुष्य का संसार घूमा करता है। उन सबका अस्तित्व आत्मा के इर्द-गिर्द ही केंद्रित है, जो व्यवहार में मैं और मेरा के रूप में भासता है। मेरा शब्द समाप्त होते ही, मैं के चारों ओर खड़ा विशाल भवन गिरकर अदृश्य हो जाता है।

इस तरह उपनिषदों में नश्वर अनात्मतत्त्व के पीछे सक्रिय अनश्वर आत्मतत्त्व को जानने, पहचानने व उसके आलोक में अनात्मतत्त्व को वशवर्ती करने की बात की गई है। देहबोध एवं सांसारिक स्वार्थ के वशीभूत हुआ आत्मा ही नश्वर के आसक्त होकर इसके पाश में बँध जाता है; जबकि आत्मतत्त्व की अनुभूति पाने वाला व्यक्ति सांसारिक बंधनों से ऊपर उठ जाता है।

वेदों में आत्मतत्त्व को सबका सार और सबकी कसौटी बताया गया है। आत्मकल्याण के पथ पर ही व्यक्ति आत्मबोध को प्राप्त होता है। इसी कसौटी पर हम अपनी सफलताओं और असफलताओं को नाप सकते हैं। जो विचार, भाव, कर्म एवं चेष्टाएँ हमें आत्मज्ञान की ओर ले जाते हैं, वे ही सार्थक हैं, वरण करने योग्य हैं, अपनाने योग्य हैं।

आत्मकल्याण के आधार पर ही हमारे जीवन के समस्त हित सध सकते हैं। आत्मा ही बाह्यजगत् के साथ हमारे संबंधों का निर्धारण किया करती है। जो व्यक्ति अपने जीवन के समस्त कार्यों को अपनी आत्मा की वाणी के अनुरूप करता है, वह जीवन में कभी धोखा नहीं खाता और जो इसका अनुसरण नहीं करता, वह सन्मार्ग से च्युत हो जाता है।

इस तरह भारत की देव संस्कृति में आत्मा ही सर्वोपरि है। कठोपनिषद् इसका बहुत ही सुंदर वर्णन करता है, जिसमें आत्मा को रथी या स्वामी की संज्ञा दी गई है। इसमें शरीर को एक रथ या वाहन माना गया है। बुद्धि इसकी सारथी है। मन को लगाम तथा इंद्रियों को इसके घोड़ों की संज्ञा दी गई है।

संसार मार्ग है, जिस पर इंद्रियरूपी घोड़ों को चलाना होता है। रथ के स्वामी के लिए ही गाड़ी, घोड़े और लगाम आदि की व्यवस्था है। रथ का अस्तित्व व उसकी सार्थकता उसके स्वामी से जुड़ी हुई है। गाड़ी इसलिए अच्छी नहीं है कि वह दृढ़ और सुंदर है, अपितु इसलिए अच्छी है कि उससे गाड़ी के स्वामी का हित सधता हो। कोई वस्तु उस सीमा तक अच्छी होती है, जिस सीमा तक वह आत्मा के विकास में योगदान दे।

इसी आधार पर व्यक्ति का जीवन व्यापक स्तर पर सधता है। वेद-उपनिषदों में कहा गया है कि जो सब प्राणियों को आत्मा में देखता है और सब प्राणियों में अपनी आत्मा को देखता है, वह उस आत्मदर्शन के पश्चात आत्मा की सत्ता में संदेह नहीं करता।

जिस अवस्था विशेष में ज्ञानी पुरुष की दृष्टि में सब प्राणी अपनी आत्मा के समान हो जाते हैं, अर्थात सबको आत्मस्वरूप मानते हुए वह सबके साथ प्रेम व्यवहार करता है, उस समय सब प्राणियों में आत्मदृष्टि से एकता का अनुभव करता है, उस ज्ञानी के लिए कोई मोह और शोक नहीं रह जाता। वह जीवन के परम उद्देश्य की भावावस्था को पा जाता है।

आत्मा अमर है तथा आत्मज्ञानी पुरुष आत्मज्ञान के साथ अमरता को प्राप्त होता है। यह आत्मज्ञान ही मनुष्य का परम लक्ष्य है। मनुष्य तब तक ही नाशवान रहता है, जब तक वह अपनी सत्ता को शरीर मात्र तक सीमित समझता है।

भौतिकता एवं भोगवाद में लिप्त आज का मानव अपने शरीर को ही सब कुछ मान बैठा है। शरीर की तुष्टि के लिए ही सब कुछ करता रहता है, जिसका स्वरूप नश्वर है, जिसे देखकर उसके मन में इसके नष्ट होने व छीनने का भय सदा बना रहता है।

इस अवस्था से जीवात्मा को मुक्त करना ही आध्यात्मिक जीवन का उद्देश्य है। जिस समय मनुष्य, मरणधर्मा शरीर से स्वयं को पृथक कर आत्मतत्त्व में रमण करने लगता है, स्थित होता है, उसी समय वह अमर हो जाता है। इसी अवस्था में वह सुख-दु:ख, मान-अपमान, लाभ-हानि, जीवन-मरण जैसे द्वंद्वों के पार हो जाता है और समत्वदृष्टियुक्त स्थितप्रज्ञता को प्राप्त होता है।

ऐसे मनुष्य की दु:ख-निवृत्ति तथा मानव-कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। आंतरिक समता व शांति की इस अवस्था में ही वह जीवन के वास्तविक सुख को प्राप्त होता है, जिसे मानव जीवन का ध्येय, ज्ञेय एवं परम श्रेय भी माना गया है।

जीवमात्र को आत्मदृष्टि से देखता हुआ व्यक्ति इस अवस्था में कभी अनैतिक व्यवहार नहीं करता। वह आत्मकल्याण के साथ लोक-कल्याण का भी संवाहक बन जाता है। ❑

एक बार तीन स्त्रियाँ गाँव के पनघट पर पानी भरने गईं। वे एकदूसरे से अपने पुत्रों के गुणों का बखान करने लगीं। पहली बोली—"मेरा बेटा बहुत बड़ा ज्योतिषी है।" दूसरी ने कहा—"मेरा बेटा बहुत नामी पहलवान है।" तीसरी स्त्री को चुप देखकर उन्होंने उसके पुत्र के विषय में पूछा। वह बोली—"बहन! वह कोई नामी व्यक्ति नहीं है, परंतु मेरी दृष्टि में मेरा प्रिय पुत्र है।"

इसके उपरांत सभी स्त्रियाँ अपने घरों की तरफ लौट पड़ीं। मार्ग में पहली स्त्री का पुत्र मिला और बोला—"बहुत अच्छा माँ! मैं जा रहा था, तुमने पानी से भरा घड़ा दिखा दिया, यह शुभ शकुन है। अब दिन अच्छा बीतेगा।"

थोड़ी दूर पर दूसरी स्त्री का पुत्र मिला और बोला—"माँ! दिनभर कुश्ती करके आ रहा हूँ, जोर की भूख लगी है। जल्दी से घर पहुँचकर खाना लगा दे।" तभी तीसरी स्त्री का पुत्र आया और बोला—"माँ! मैं आ ही रहा था तो तू पानी भरने क्यों आ गई ?" ऐसा कहकर वह माँ से घड़ा लेकर चल दिया। शेष दोनों स्त्रियाँ खड़ी सोचती रह गईं कि सच्चा पुत्र कहलाने योग्य कौन है ?

संत न होते जगत् में, जल जाता संसार

संत कबीर का भगवान वह चेतन आत्मतत्त्व है, जो घट-घट में वास करता है। वह दलित, उपेक्षित और अपमानित सभी के लिए सहज उपलब्ध है। यही कारण है कि कबीर की वाणी का रसायन-अमृत वर्तमान की सारी व्याधियों को मिटाने में सक्षम है।

यह वाणी भौतिक और आत्मिक दोनों पक्षों को एक समान रूप से देखती, सँभालती और सँवारती है। वर्तमान विश्व की आंतरिक और बाह्य स्थिति का यथार्थ चित्र देने वाले संत कबीर का कथन है—

आग लगी आकाश में झरि झरि पड़े अंगार।
संत ना होते जगत में, जल जाता संसार॥

संतों का मार्ग निर्गुण-निराकार ब्रह्म की साधना का मार्ग है। कबीर आखिन की देखी को मानते हैं। कागद की लेखी को नहीं, क्योंकि व्यक्ति के विचार और व्यवहार में बड़ा अंतर आ गया है। उसकी कथनी और करनी भिन्न होने से बड़ी विपत्तियाँ जन्म ले रही हैं। कबीर सत्य के आग्रही और पुजारी हैं। वे स्वयं भी जगे हुए हैं और पूरे मानव समाज को भी जगा हुआ देखना चाहते हैं। लोगों को सोया हुआ देखकर कबीर दु:खी हैं।

सुखिया सब संसार है, खावै और सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै॥

मनुष्य की आत्मा को जगाने वाले संतों की दृष्टि मात्र धार्मिक नहीं, आध्यात्मिक है। आध्यात्मिकता भौतिक और आत्मिक, दोनों पक्षों को एक साथ समान रूप से देखती, सँभालती और सँवारती है। निर्गुण-निराकार को सर्वत्र उपस्थित मानकर प्रेम, संवेदना, हृदयगत स्पंदनों में परमात्मा को देखने-पुकारने वाली वाणी कबीर को रामसनेही बनाती है। यहाँ कबीर अधिक तार्किक, मुखर और मानव हितैषी होकर उभरते हैं।

अपने समय के शहंशाहों, पंडों के वर्चस्व को खुली चुनौती देने वाले कबीर के पाँवों के नीचे अध्यात्म की वह जमीन थी, जहाँ खड़े होकर उन्होंने इन बड़ी सत्ताओं को ललकारा था। वे राम को, निर्गुण-निराकार राम को, एकमात्र औषधि मानकर सब व्याधियों का उपचार मानते हैं। इस मार्ग पर चलकर कबीर ने जो देखा और पाया उसे एक साखी में प्रस्तुत किया—

शून्य मरै अजपा मरै, अनहद हू मरि जाय।
राम सनेही न मरै, रहा कबीर समुझाय॥

अर्थात बौद्धों, सिद्धों, नाथपंथियों आदि का शून्यवाद अजपा जप और अनहद नाद तक मरणशील है। कबीर का कथन है कि हमारा यह ब्रह्मांड ब्रह्मजल-चेतन जल से भरा हुआ है, जो सबको सहज उपलब्ध है, किंतु सबका भाग्य ऐसा नहीं कि सब उस ब्रह्मजल का पान कर सकें। केवल गुरु की कृपा हो, तभी वह जल-पान किया जा सकता है और अपनी आत्मा को तृप्त किया जा सकता है अन्यथा जल में रहते हुए भी मछली की भाँति हम प्यासे ही रह जाएँगे। इस स्थिति को देखकर संत कबीर कहते हैं—

जल विच मीन प्यासी।
मुझे सुन-सुन आवै हांसी।

यह हँसी आने जैसी ही बात है। इस धरती पर और समूचे ब्रह्मांड में हर कहीं चेतन जल भरा हुआ है और व्यक्ति उसमें रहता हुआ भी प्यासा और अतृप्त रहता है। कबीर की वाणी में अनेक

प्रसंग, दृष्टांत, उल्लेख मिलते हैं, जहाँ सर्वत्र एक ईश्वर की उपस्थिति का भाव अनुभव होता है।

पाति ब्रह्मा पुष्पे विष्णु, फूल फल महादेवा।
तीनि देवी एक मूर्ति, करै किसकी सेवा॥

यहाँ पत्तियों को ब्रह्मा, पुष्पों को विष्णु तथा फूल-फलों को महादेव का स्वरूप माना गया है। संत कबीर मालिन को यही प्रबोध देते हुए कह रहे हैं कि इन्हें तोड़कर भगवान की मूर्ति पर चढ़ाना पाप है। इन पौधों-पत्तियों आदि में तो प्राण हैं, पत्थर की मूर्ति निष्प्राण है।

आज 600 साल बाद के पर्यावरणविद् भी इस आत्मवत् दृष्टिकोण तक नहीं पहुँचे, जहाँ कबीर तब पहुँच चुके थे। धरती के सभी जीव ईश्वर की संतान हैं, इस कारण सभी परस्पर संबद्ध हैं, चाहे कीड़ा हो या बड़े शरीर वाला हाथी हो, अत: जीव-दया का अपना दायित्व मनुष्य को निभाना चाहिए।

साँई के सब जीव हैं, कीड़ी कुंजर सोय।

मनुष्य को ज्ञान-अध्यात्म ज्ञान और विवेक बुद्धि भी है तथा सृष्टि का सर्वाधिक विकसित प्राणी होने से अन्य सब प्राणियों, प्रकृति-परिवेश की रक्षा-सुरक्षा का दायित्व भी उसी का है। इसलिए परिवारसहित इन सबके प्रति दायित्व निर्वाह ही मुक्ति है। तीर्थस्नान, मूर्तिपूजन, धर्मस्थलों की यात्राओं में मुक्ति नहीं। जीव-दया, सेवा, त्याग से ही सच्चा आनंद मिलता है। आनंद आत्मा का गुण है। आत्मिक आनंद की अवस्था ही परमात्मिक आनंद की पहचान और उपलब्धि की दिशा है, फिर इस आत्मोपलब्धि के लिए हाथ-पैर मारने की बहुत आवश्यकता नहीं। यह अत्यंत सहज कार्य है। परमात्मा को पाना अति सरल है। संत कबीर ने पाया है तो वे कहते हैं, कोई भी पा सकता है—

कहत कबीर मैं कछू नहीं कीन्हा।
सहज सुहाग राम मोहि दीन्हा॥

अर्थात जन्म के साथ हम जो और जैसी सरलता, सहजता लेकर आए थे, उसे ही हम बनाए रखें या यदि खो गई है तो उसे पुन: अर्जित कर लें, बस, इतना ही पर्याप्त है राम की कृपा, स्नेह पाने के लिए। यह सहजता ही कठिन है। ईश्वर मनुष्य की सहजता को पहचानते हैं, गरीबी-अमीरी को नहीं, बाहरी पूजा-पाठ, धार्मिक क्रियाकलापों को नहीं।

व्यक्ति के हृदयगत सहज मानवीय भावों से पर-पीड़ा में द्रवित होने से, दया, करुणा के सहज मानवीय व्यवहार से व्यक्ति की आत्मा भीतर मुखरित हो उठती है। इससे समूचा अस्तित्व आनंदित हो उठता है। आनंद की फुहार पड़ने लगती है। उस समय परमात्मा हम पर आनंद लुटा रहा होता है। यह सब तभी संभव है, जब हमारा मन निर्मल हो। काम, क्रोध आदि विकारों की मलिनता से रहित हो।

कद् व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना।

अर्थात हे देवो! क्या उचित है, क्या अनुचित यह निरंतर विचारते रहो।

संत कबीर कहते हैं—

कबिरा मन निर्मल भया, जैसे गंगा नीर।
पीछे-पीछे हरि फिरै, कहत कबीर-कबीर॥

अर्थात सहज, सरल, निर्मल व्यक्ति का अनुचर हो जाता है परमात्मा। विश्व के धर्मों में ऐसी ऊँची, सीधी, मर्म की बात देखने में नहीं आतीं, जो संत कबीर ने व्यक्त की हैं। मन गंगा के जल के समान पारदर्शी और पावन होना चाहिए। तब संत कबीर के अध्यात्म भाव के अनुसार ईश्वर भी मनुष्य के साथ चलने लगता है। इस तरह संत कबीर अध्यात्म को जीवन के सारतत्त्व के रूप में निरूपित करते हैं। इसी में जीवन की समस्त समस्याओं का समाधान निहित है। ❑

शाश्वत सुख का राजमार्ग

जीवन में हर मनुष्य सुखी होना चाहता है और सुख प्राप्त करने के लिए वह नाना प्रकार के कर्म करता है। सुख प्राप्त करने के लिए वह धन-संपदा अर्जित करता है। धन से वह अच्छे घर, भोजन, वस्त्र आदि की व्यवस्था करता है। वह महँगी गाड़ियाँ खरीदता है, महँगे वस्त्र पहनता है, विविध प्रकार के सुस्वादु भोजन का स्वाद लेता है, वह वायुयान में सफर कर सुख प्राप्त करना चाहता है, पर वह फिर भी स्वयं को पूरी तरह से सुखी नहीं कर पाता है।

सुस्वादु भोजन करना, अच्छे घर में रहना, गाड़ियों में घूमना, वायुयान में सफर करना—इसमें बुरा कुछ भी नहीं है। मनुष्य जीवन में हमें भौतिक सुख पाने के लिए भौतिक साधनों की, भौतिक वस्तुओं की आवश्यकता होती ही है। हम अच्छे वस्त्र पहनें, अच्छे भोजन ग्रहण करें, गाड़ियों, वायुयानों में घूमकर अपने गंतव्य को पहुँचें, यात्राएँ करें।

यह तो अच्छा ही है, पर सच यह भी है कि भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने मात्र से मनुष्य पूर्णरूपेण सुखी नहीं हो सकता। यदि भौतिक साधनों के सहारे सुखी होना संभव हो पाता तो भौतिक धन-वैभव, ऐशोआराम की सभी वस्तुएँ अर्जित कर लेने पर मनुष्य पूर्णरूपेण सुखी हो गया होता। यदि यह सत्य होता तो जिनके पास अथाह धन-संपदा है, वे संसार के सबसे अधिक सुखी व्यक्ति होते, पर ऐसा कभी होता नहीं। यदि अपार धन-वैभव के होने पर मनुष्य सुखी होता तो महावीर और बुद्ध राजमहल के सुख-वैभव का त्याग न करते।

वे सुख-वैभव का त्याग कर वर्षों तक कठिन तपस्या क्यों करते? वर्षों तक कठिन तपस्या व ध्यान के पश्चात जब महावीर और गौतम को आत्मबोध हुआ तब उन्होंने संसार को यह बतलाया कि अज्ञान ही मनुष्य के दु:खों का कारण है और ज्ञान के द्वारा अज्ञान का समूल नाश हो जाने पर ही मनुष्य दु:खों से मुक्त होकर पूर्णरूपेण सुखी हो सकता है। इस प्रकार हमारा सुखी या दु:खी होना अपार धन-संपदा के होने या न होने पर निर्भर नहीं करता, बल्कि इस बात पर निर्भर करता है कि हमारे पास ज्ञानदृष्टि है या नहीं।

जैसे दृष्टिहीन होने पर व्यक्ति संसार के सौंदर्य को नहीं देख पाता, उससे आनंद नहीं ले पाता। उसी प्रकार ज्ञानदृष्टि न होने पर हम अपार धन-संपदा के होते हुए भी दु:खी रहते हैं, पर जो ज्ञानी हैं, वे अपार धन-संपदा के बीच रहकर भी सुखी रहते हैं और फकीरी में भी सदैव आनंदमग्न रहते हैं।

दरअसल आत्मज्ञान, ब्रह्मज्ञान होने पर ही हम यह अनुभव कर पाते हैं कि संसार की सभी वस्तुएँ नश्वर हैं, क्षणभंगुर हैं। इसलिए नश्वर और क्षणभंगुर वस्तुएँ हमें कभी भी शाश्वत सुख नहीं दे सकतीं। हमारा शरीर भौतिक है, इसलिए शरीर—निर्वाह के लिए हमें भौतिक वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती है। भौतिक वस्तुओं से हमारे शरीर मन व इंद्रियों को सुख प्राप्त होता है, पर यह सुख भी क्षणभंगुर ही होता है।

जीवात्मा शरीर नहीं है। शरीर तो जीवात्मा का वस्त्र मात्र है। इसलिए असली जीव शरीर नहीं, बल्कि शरीर में वास कर रही जीवात्मा है,

जो सत्-चित्-आनंदस्वरूप ब्रह्म का ही अविनाशी अंश है। शरीर के नष्ट हो जाने पर भी इस अविनाशी आत्मा का कभी संपूर्णतया नाश नहीं होता।

शरीर के नष्ट हो जाने पर जीवात्मा अपने शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार पुनः नूतन शरीर धारण कर लेती है और पुनः जीवात्मा अपने नए शरीर में, नए जीवन में आकर पुनः अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख भोगती है और इस प्रकार जीवन-मृत्यु के चक्र में पड़ी हुई जीवात्मा दुःख भोगती रहती है, पर जब भगवद्उपासना से साधक को अपनी आत्मा में ब्रह्म का साक्षात्कार होता है तब उसके सारे कर्म-संस्कार मिट जाते हैं।

जीवात्मा, परमात्मा के प्रकाश से, संस्पर्श से, परमात्मरूप हो जाती है और वह अपने वास्तविक स्वरूप को जान लेती है, पहचान लेती है। तब उसे यह बोध हो जाता है कि मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ। शरीर तो मेरा वस्त्र मात्र है। मैं ब्रह्म हूँ। उसे जीव और ब्रह्म अर्थात आत्मा और ब्रह्म की अभेदता, अभिन्नता, एकता की अनुभूति होती है और उस अनुभूति से उसे सुख प्राप्त होता है उसे ही ब्रह्मसुख कहते हैं। उसे ही ब्रह्मानंद कहते हैं, उसे ही परम सुख कहते हैं। उसे ही शाश्वत सुख कहते हैं।

इस प्रकार निज बोध से साधक को जब ज्ञानदृष्टि मिल जाती है, तब वह उस ज्ञानदृष्टि से ही संसार को देखता है और तदनुरूप व्यवहार करता है। वह स्वर्ण के घर में रहता हो या मिट्टी के घर में, दोनों में ही वह आनंदमग्न रहता है।

वह पैदल चल रहा हो या वायुयान में, वह आनंदमग्न होता है। वह रोटी खा रहा हो या छप्पन प्रकार के सुस्वादु व्यंजन, वह आनंदमग्न रहता है; क्योंकि वह हर पल निज बोध में ही स्थित होता है। किसी वस्तु, व्यक्ति से उसकी कोई आसक्ति रही ही नहीं। उसके लिए न तो कोई मित्र होता है न शत्रु।

वह सबमें उसी ब्रह्म को देखता है और आनंदित रहता है। वह सुख-दुःख, मान-अपमान, हर्ष-विषाद से परे होकर सदा समत्व की स्थिति में होता है। उसे कोई वस्तु या घटना न तो हर्षित करती है न ही दुःखी; क्योंकि वह देह, मन, बुद्धि और इंद्रियों के आकर्षण और असर से परे सदैव आत्मभाव में ही स्थित होता है।

वह देहपरायण न होकर आत्मपरायण होता है। वह देह में होते हुए भी विदेह होता है; क्योंकि देह के प्रति उसकी कोई आसक्ति नहीं होती। मन व इंद्रियाँ उसे विचलित नहीं कर पातीं। वह सदैव अपनी आत्मा से ही आत्मा में सर्वज्ञ, सर्वव्यापी ब्रह्म का ध्यान करता है और उसी से उसे सदैव ब्रह्मसुख, परम सुख, शाश्वत सुख का अनुभव होता है।

उसके लिए सुखी होना इंद्रियों के द्वारा भोगे गए या भोगे जाने वाले विभिन्न प्रकार के विषय-भोगों से उत्पन्न सुख, क्षणिक सुख पर निर्भर ही नहीं करता।

वह शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य, दोनों से परे होकर योगियों की तरह सिर्फ निष्काम कर्म करता है अर्थात वह अपने हर कर्म को भगवान का ही काम समझकर करता है और उसके परिणाम की चिंता नहीं करता; क्योंकि वह अपने कर्म को भगवान को ही अर्पित करता जाता है।

इसलिए वह सफलता-असफलता में भी संतुलित और प्रफुल्लित रहते हुए अपने हर कर्म को कुशलता के साथ, संपूर्ण शक्ति, सामर्थ्य व ऊर्जा के साथ संपन्न करता है और सदैव आनंदित रहता है। वह सदैव परब्रह्म से जुड़ा रहता है, परिश्रम द्वारा धर्मवृत्ति से धन अर्जित करता है और उस धन से विश्वरूप भगवान की सेवा करता है। वास्तव में यही शाश्वत सुख का मार्ग है, राजमार्ग है; जिस पर चलकर कोई भी शाश्वत सुख, परम सुख प्राप्त कर सकता है। ❑

मंत्रों में मुकुटमणि है गायत्री मंत्र

चंद्रमौली की उम्र मात्र तीन वर्ष की थी तभी उसके माता-पिता परलोक सिधार गए। बेचारा बालक चंद्रमौली अनाथ हो गया, पर कहते हैं कि जिसका कोई नहीं होता, उसके भगवान होते हैं। जिसका कोई सहारा नहीं होता, उसका सहारा भगवान होते हैं। भगवान तो अनाथों के नाथ हैं। फिर सर्वव्यापी, सर्वशक्तिशाली भगवान के होते हुए भला कोई अनाथ कैसे हो सकता है ? शरीर को जन्म देने वाले माता-पिता नहीं रहे तो क्या हुआ ? परब्रह्म परमेश्वर तो सबके पिता हैं, तभी तो वे परमपिता कहलाते हैं। इस संपूर्ण सृष्टि के सृजनहार परमेश्वर तो सर्वत्र व्याप्त हैं।

हर जीव, हर जीवात्मा—परमात्मा का ही तो अंश है। माता-पिता से मनुष्य के शरीर का निर्माण अवश्य होता है, पर उस शरीर में जो चेतना है, जो आत्मा है, वह तो परमात्मचेतना का ही अंश है। वह परमात्मा का ही अंश है। अस्तु हर जीव को परमात्मा का कृपाप्रसाद किसी-न-किसी रूप में अवश्य प्राप्त होता है। सो अनाथ चंद्रमौली का लालन-पालन अनाथों के नाथ, अनाथनाथ भगवान की कृपा से बड़े प्रेम से होने लगा।

प्रभु-प्रेरणा से विमला नाम की एक निस्संतान स्त्री को चंद्रमौली पर बड़ी दया आई और वह अपने पुत्र की भाँति बड़े प्रेम से उस बालक का पालन-पोषण करने लगी। विमला भगवान सूर्य को अपना आराध्य मानती थी और वह बड़े भक्ति-भाव से भगवान सूर्य की नित्य उपासना करती थी। वह अपने गुरु के निर्देशानुसार नित्य गायत्री महामंत्र का जप भी किया करती थी। वह संध्यावंदन में नित्य उदीयमान सूर्य का ध्यान करते हुए गायत्री मंत्र का जप करती थी। नित्य यज्ञ व शास्त्रों का स्वाध्याय करती थी।

इस प्रकार नित्य संध्यावंदन, ध्यान, यज्ञ, स्तुति, पाठ, स्वाध्याय आदि होते रहने से घर का वातावरण बड़ा ही दिव्य, पवित्र, सुगंधित और आध्यात्मिक हो चला था। उसी दिव्य वातावरण में चंद्रमौली का पालन-पोषण होने लगा। दस वर्ष की आयु में धर्मपरायणा विमला ने एक वेदज्ञ व गायत्री महाविद्या के मर्मज्ञ संत के द्वारा एक दिव्य तीर्थ में जाकर चंद्रमौली का यज्ञोपवीत संस्कार संपन्न कराया व गायत्री मंत्र की दीक्षा भी प्रदान करवाई।

यज्ञोपवीत संस्कार के समय बालक को गायत्री मंत्र का सविस्तार महत्त्व बतलाते हुए संतप्रवर ने उसे गायत्री मंत्र प्रदान किया और नित्य गायत्री मंत्र जप करने का विधि-विधान भी बतलाया। उन्होंने गायत्री मंत्र व गायत्री-उपासना के महत्त्व को समझाते हुए उससे कहा—"वत्स! ब्रह्मप्राप्ति ही मानव जीवन का परम लक्ष्य है और जो नियम व संयमपूर्वक नित्य गायत्री मंत्र का जप करता है, उसके लिए ब्रह्म-साक्षात्कार का द्वार अवश्य ही खुल जाता है। गायत्री मंत्रजप करते हुए साधक जब उस दिव्य, तेजस्वी, ब्रह्म का ध्यान करता है तब उसकी बुद्धि पवित्र होती है और बुद्धि पवित्र होने से साधक सत्कर्म करने को प्रेरित होता है। वह सन्मार्ग में प्रेरित होता है। फलस्वरूप वह भौतिक समृद्धि भी पाता है और ब्रह्मप्राप्ति कर

ब्रह्मसुख भी प्राप्त कर लेता है। इसलिए गायत्री को महामंत्र व सभी मंत्रों का मुकुटमणि भी कहा गया है। वेदों का सार गायत्री ही है।''

वे फिर बोले—''वत्स चंद्रमौली! ब्रह्म गायत्री है और गायत्री ही ब्रह्म है। इसलिए जो गायत्री की उपासना करता है, वह ब्रह्म की ही उपासना करता है। तभी तो गीता (10.35) में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—''छंदों में मैं गायत्री छंद हूँ। गायत्री को कामधेनु भी कहा गया है; क्योंकि गायत्री साधक की सभी मनोकामनाएँ पूर्ण करती हैं और साधक के सभी कष्टों का निवारण भी करती हैं।''

उन्होंने आगे कहा—''यदि कोई साधक, उपासक, सत्-चित्-आनंदस्वरूप व प्रकाशस्वरूप ब्रह्म को हृदय में और सूर्यमंडल में ध्यान करता हुआ, कामनारहित हो गायत्री मंत्र को जपे तो वह अविलंब संसार के आवागमन से छूट जाता है। तुम सार रूप में यह समझ लो कि गायत्री ही भगवान विष्णु हैं और भगवान शंकर भी गायत्री ही हैं। ब्रह्माजी भी गायत्री में परायण हैं, क्योंकि गायत्री तीनों देवों का स्वरूप हैं। इसलिए गायत्री-उपासना से तीनों देवों की उपासना स्वयमेव ही हो जाती है। गायत्री-उपासना से सर्वदेवों व निर्गुण, निराकार, ब्रह्म की उपासना स्वयमेव ही हो जाती है। संसार में ऐसा कोई मंत्र नहीं, जिससे सभी देवों की उपासना एक साथ हो सके। वह मंत्र मात्र गायत्री मंत्र ही है। इसलिए उसे सार्वभौम मंत्र कहा जाता है। इसलिए उसे महामंत्र कहा जाता है। जो गायत्री की उपासना करता है, उसके लिए किसी अन्य मंत्र व उपासना का आश्रय लेने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती। इसलिए तुम नियम व संयमपूर्वक आज से नित्य गायत्री उपासना प्रारंभ कर दो। इससे तुम्हारा सर्वप्रकार से कल्याण होगा।''

इस प्रकार गायत्री मंत्र में दीक्षित होकर चंद्रमौली अपनी माँ के साथ घर लौटा और अपने गुरु के निर्देशानुसार गायत्री-उपासना में अनन्य श्रद्धा, भक्ति व प्राणपण से जुट गया। अपने गुरु के कहे अनुसार चंद्रमौली नित्य गायत्री मंत्रजप करने लगा। वह नित्य ब्राह्ममुहूर्त में उठकर नित्य क्रिया से निवृत्त हो पास में बहती हुई पतितपावनी सुरसरि गंगा में स्नान करता और गंगा में कुछ देर खड़े होकर गायत्री मंत्र का जप करता। फिर उदीयमान सूर्य को अर्घ प्रदान कर वह गंगा से बाहर आकर अपने घर के बाहर बने चबूतरे पर आसन बिछाकर उस पर सुखासन में बैठकर पहले पाँच मिनट तक उदीयमान हो रहे भगवान सूर्य को अपलक नेत्रों से देखता।

फिर नेत्रों को बंद कर मन की आँखों से उसी उदीयमान सूर्य का अपने हृदय में ध्यान करता। हृदय में सूर्य का ध्यान करते हुए उसे ऐसा महसूस होता कि भगवान सूर्य के दिव्य प्रकाश से उसका हृदयकमल खिल रहा है। सूर्य के दिव्य प्रकाश से उसका हृदयलोक जगमगाने लगा है। उसका मन निर्मल हो रहा है। गायत्रीरूपी ब्रह्मगंगा में नहाकर, घुलकर उसकी आत्मा पवित्र हो रही है। उदीयमान सूर्य की स्वर्णिम रश्मियों की बारिश में वह स्नान कर रहा है, जिससे उसका मन धुल रहा है, चित्त धुल रहा है, मन पवित्र हो रहा है।

उसके हृदय में करुणा, प्रेम, संवेदना जैसे दिव्य भाव उमड़ रहे हैं। उसके अंत:करण में आनंद, उमंग और उत्साह की तरंगें उठ रही हैं, जो उसे आह्लादित और आनंदित कर रही हैं। ध्यान के पश्चात वह अपनी माता विमला के साथ बैठकर यज्ञ करता, स्वाध्याय करता और तत्पश्चात वह गोदुग्ध, हरी-ताजी शाक-सब्जियाँ, फल आदि के रूप में सात्त्विक आहार लेता।

सायंकाल सूर्यास्त से पूर्व ही सिर्फ दुग्धाहार लेता और फिर जब शयन करता तो शयन करते हुए अपने हृदय में उदीयमान सूर्य का ध्यान करते हुए ही सो जाता। भगवान का ध्यान करते हुए जो निद्रा आती है, वह सामान्य निद्रा नहीं, बल्कि योगनिद्रा बन जाती है; क्योंकि वह निद्रा भगवान के ध्यान में डूबे रहने पर आती है। ऐसी निद्रा हमें भगवान से भर देती है। हमें भगवान से जोड़ देती है। इस तरह योगनिद्रा का अभ्यास किया जाए तो निद्रा भी ध्यान और समाधि बन जाती है। चंद्रमौली की निद्रा भी ध्यान-समाधि बनती जा रही थी।

इस प्रकार की योगनिद्रा में साधक को बुरे स्वप्न नहीं आते, बल्कि दिव्य स्वप्न आते हैं और साधक को आह्लादित करते हैं। स्वप्न में भगवान के दिव्य दर्शन होते हैं। ऐसी निद्रा से मन शांत और प्रफुल्लित होता है। तनाव, थकान आदि से मुक्ति मिलती है। सुबह उठने पर मन ताजगी और दिव्यता से भरा होता है, जिससे साधक का पूरा दिन ही उत्साह, उमंग और आनंद में बीतता है। उसका हर कर्म, कर्मयोग बन जाता है। वह अपने हर कर्म को भगवान का ही मानकर पूजा के भाव से करता है। गायत्री मंत्र के जप से चंद्रमौली की बुद्धि पवित्र होती गई। उसकी बुद्धि तीव्र होती गई, जिससे वह पढ़ाई में भी अव्वल आता रहा।

चंद्रमौली अब बड़े हो चले थे और एक सुकन्या से उनका पाणिग्रहण भी हो चुका था। जीविकोपार्जन के लिए वे स्वरोजगार करते थे। उसमें परमात्मा की कृपा से उन्हें बहुत लाभ होता था। वे अपनी धन-संपदा को प्रभु का ही प्रसाद समझकर समाज के जरूरतमंद लोगों की मदद किया करते थे। वे वर्ष में एक बार सपरिवार तीर्थयात्रा भी कर आते थे। पवित्र तीर्थों की यात्रा व सेवन करने से वहाँ संव्याप्त घनीभूत अदृश्य आध्यात्मिक ऊर्जा के प्रवाह में होने से चित्त निर्मल होता है, मन में पवित्र विचारों का उदय होता है और पवित्र विचारों के उदय होने से व्यक्ति पवित्र कर्म, शुभ कर्म करने को प्रेरित होता है।

तीर्थों की घनीभूत आध्यात्मिक ऊर्जा के संपर्क में होने से मन में शांति, हृदय में आह्लाद व साधना में और भी तीव्रता आती है। यही सोचकर चंद्रमौली तीर्थयात्रा अवश्य ही किया करते थे। अब चंद्रमौली 60 वर्ष के हो गए थे। नित्य ध्यान-साधना के प्रभाव से उनका चित्त निर्मल हो चुका था, जिसके कारण उन्हें अपने हृदय में सदैव ब्रह्मानुभूति, भगवदानुभूति होती थी और आत्मा सदैव आह्लादित व आनंदित होती थी। एक रात्रि जब वे अपने हृदय में सूर्यनारायण का ध्यान करते-करते सो गए तब उन्हें एक दिव्य स्वप्न आया। उन्होंने देखा कि देवात्मा हिमालय के दिव्य, पवित्र और अलौकिक वातावरण में बैठकर वे भगवान का ध्यान कर रहे हैं और आकाश में उदीयमान व प्रकाशवान सूर्य ही उनके हृदय में भी उदीयमान व प्रकाशित हो रहा है।

मंत्र, देवता, आराध्य या भगवान का शब्द शरीर ही है। जब मंत्र सिद्ध होता है तब वह मंत्र ही देव शरीर, देव आकृति अथवा प्रकाश शरीर में परिणत हो जाता है और जप करने वाले को निहाल कर देता है। नियमित रूप से व दीर्घकाल तक मंत्रजप करने के पश्चात चंद्रमौली को ऐसा महसूस हुआ कि गायत्री मंत्र के उच्चारण से उत्पन्न ध्वनि तरंगें अंतरिक्ष में परिक्रमा करते हुए गायत्री मंत्र के रूप में ही अंतरिक्ष में प्रकाशित हो रही हैं और फिर वह प्रकाशित मंत्र ही सविता देव के रूप में परिणत हो उदीयमान हो रहा है।

चंद्रमौली ने देखा कि सविता देव मानवीय आकृति व प्रकाश शरीर में परिणत होकर उनके

समक्ष प्रकट होकर उनके हृदय में प्रवेश कर गए हैं। फिर अंदर-बाहर सर्वत्र वे ही दृष्टिगोचर हो रहे हैं। उनके प्रकाश शरीर की आभा से वहाँ का वातावरण जगमगा उठा है। भगवान भास्कर चंद्रमौली को अपने हृदयकमल पर आसीन होते हुए दिखाई पड़ने लगे। हृदयकमल पर भगवान भास्कर के आसीन होते ही उनका हृदय दिव्य प्रकाश से जगमगा गया।

भगवान के इस अनुग्रह को देखकर चंद्रमौली की आँखें प्रेमाश्रुओं से छलछला आईं। उन्होंने अपने हृदय में व बाहर अपने सामने खड़े भगवान को साष्टांग नमस्कार किया और विविध मंत्रों से सुमधुर कंठ से उनका स्तुतिगान करने लगे। भगवान भास्कर ने उन्हें उठाकर अपने अंक में भर लिया। भगवान का स्पर्श पाते ही चंद्रमौली का पूरा शरीर ही प्रकाश शरीर में परिणत हो गया। प्रकाश शरीर में परिणत होते ही उन्हें अतिशय आनंद की अनुभूति हुई। तभी चंद्रमौली की आँखें खुल गईं। यह चंद्रमौली के लिए साक्षात् भगवद्साक्षात्कार ही तो था, जिसके वे सचमुच सुपात्र थे।

भगवत्प्रेरणा से चंद्रमौली अपने गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारियों से मुक्त होकर, घर की जिम्मेदारियों को अपने पुत्रों को सौंपकर जन-जन में गायत्री-उपासना का प्रचार करने लगे और औरों के लिए भी भगवत्प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करने में प्राणपण से जुट गए। अब जन-जन में भगवद्भक्ति का प्रचार करना ही उनके जीवन का ध्येय बन गया।

इस प्रकार गायत्री-उपासना से चंद्रमौली का जीवन धन्य हो गया। गायत्री-उपासना से उन्हें ब्रह्मसुख व भौतिक सुख की प्राप्ति हुई। उनके गुरु द्वारा गायत्री-उपासना के बारे में बताई गई सारी बातें उनके जीवन में चरितार्थ व फलीभूत हुईं। सचमुच मंत्रों में मुकुटमणि है—गायत्री मंत्र। ❑

एक बार यक्षों ने अकारण पराक्रमी सम्राट ध्रुव पर आक्रमण कर दिया। ध्रुव ने भी घनघोर प्रत्युत्तर दिया। असंख्यों यक्ष मारे गए। जब प्रजापति मनु ने यक्षों का भीषण संहार होते देखा तो वे ध्रुव के पास पहुँचे और बोले—''वत्स! तुमने बाल्यकाल में ही भगवान नारायण की आराधना करके उनका साक्षात्कार किया है। तुम्हारे स्वभाव में ही दैवी गुण साक्षात् विद्यमान हैं। तुम यक्षों का संहार बंद कर दो।'' पितामह का आदेश मिलते ही ध्रुव ने तुरंत अपने शस्त्रास्त्र त्याग दिए।

यक्षराज कुबेर यह देखकर अत्यंत प्रसन्न हुए और ध्रुव के समक्ष पहुँचकर बोले—''सम्राट ध्रुव! आप युद्ध में सहज विजयी हो रहे थे, परंतु पितामह की आज्ञा-पालन कर युद्ध रोकने में आपने एक क्षण भी नहीं लगाया। मैं आप जैसे सुपात्र को वरदान देना चाहता हूँ।''

ध्रुव ने हाथ जोड़कर कहा—''मुझे आपसे कुछ अपेक्षा नहीं है यक्षराज! बस, मुझे यह आशीर्वाद दें कि मैं अपने पूज्य जनों की आज्ञा-पालन में सदैव दृढ़तापूर्वक तत्पर रहूँ तथा भगवान नारायण के चरणों में मेरा समर्पण अविचल बना रहे।'' भारत में पूजनीयों के सम्मान की परंपरा सदा से रही है।

पुनातु माम् तत्सवितुर्वरेण्यं

आदित्यह्यादिभूतत्वात्प्रसूत्या सूर्य उच्यते।
परं ज्योतिस्तमःऽपारे सूर्योऽयं सवितेति च॥

—*सूर्य सिद्धांत*

अर्थात वह समस्त जगत् का आदिकारण है, इसलिए उसे 'आदित्य' कहते हैं। सबको उत्पन्न करता है, प्रसव का कारण है, अत: प्रसविता–सविता कहते हैं। अंधकार को दूर करता है, इससे उसे 'सूर्य' कहा जाता है।

जिस प्रकार किसी सुंदर प्रतिमा को देवशक्तियों का प्रतीक पर्याय माना जाता है, प्रज्वलित दीप में ज्ञान की धारणा बनाई जाती है, उसी प्रकार परमपिता परमात्मा की परम चेतन शक्ति सविता का प्रतीक एवं पर्याय इस संसार में 'सूर्य' है। संपूर्ण संसार की चेतन आत्मा के रूप में भगवान सूर्य ही सविता तत्त्व का प्रतिनिधित्व करते हैं।

'**पुनातु मां तत्सवितुर्वरेण्यं**' के रूप में गायत्री महामंत्र में सूर्य देवता की ही स्तुति की जाती है। इस महामंत्र का जप करते समय भी आदित्य का, सविता का, उदीयमान सूर्य का ध्यान किया जाता है। गायत्रीसाधक अपनी उपासना में इसी सविता शक्ति को आधार बनाकर ब्रह्मतेज–ब्रह्मवर्चस की सिद्धि करता है।

संसार का अधिष्ठान सूर्य है, सूर्य का सविता और सविता का गायत्री। गायत्री शक्ति साक्षात् परब्रह्म है। ब्रह्म में स्फुरण संकल्प का स्रोत गायत्री तत्त्व ही है। गायत्री ही परमात्मा का तेज, चेतना और तेजस्विता है। गायत्रीसाधक इसी तेज को सविता शक्ति की उपासना कर इसकी प्राप्ति की प्रार्थना करता है।

इसी निमित्त वह सूर्योपस्थान, सूर्यार्घ्यदान आदि क्रियाकृत्य करते हुए निरंतर गायत्री–साधना को प्रगाढ़ करते जाता है। एक परिपक्व साधक इस रहस्य को भली भाँति जानता है कि साधना में ब्रह्मतत्त्व नहीं, अपितु उसकी ब्राह्मीशक्ति ही उपासना, अनुभूति और सिद्धि का आधार है। यह शक्ति ही उस अगम्य, अनिर्वचनीय परमतत्त्व को साधक के अंत:करण द्वारा अनुभव किए जाने योग्य बनाती है।

गायत्री–उपासना में सविता–ध्यान किया जाता है। सविता प्रकाशवान, तेजस्विता और उत्पन्न करने वाली परमात्मशक्ति है। परब्रह्म के प्रकाश और तेज को ही सविता तत्त्व कहा गया है। सविता के ध्यान में साधक अपने भीतर तेजस्विता, आत्मिक और बौद्धिक प्रखरता, प्राणिक तेज आदि सर्वांग तेज की प्राप्ति और प्रकाशपूर्ण होने की भावना करता है। संसार में प्रत्यक्षत: तेजस्वी और प्रकाशवान भगवान सूर्य ही हैं, इसलिए सविता शब्द से साधारणत: सूर्य का अर्थ किया जाता है।

जब स्वर्णिम सविता कहा जाता है तो उसकी धारणा में यही संकेत होता है कि उगते हुए सूर्य की स्वर्णिम किरणें, अरुणोदय की लालिमा आदि। परंतु यहाँ सूर्य का तात्पर्य केवल खुले चक्षु से दिखाई देने वाला अग्निपिंड मात्र नहीं है, वरन महाप्राण के स्रोत के रूप में विश्व–ब्रह्मांड की संचालक शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित है।

शास्त्रों में सूर्य को तीन प्रकार की अग्नि से युक्त माना गया है—रुचि अग्नि, पार्थिव अग्नि एवं विद्युत अग्नि। सूर्य के भीतर रहकर उसको तपाने वाली—तृप्त बनाए रखने वाली रुचि अग्नि है।

इस अग्नि से ही सूर्य ताप एवं प्रकाश उत्पन्न कर महाशक्तिपुंज के रूप में प्रतिष्ठित है। पार्थिव अग्नि हमारे जीवन रस के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसी के द्वारा हम भोजन का पाचन कर पाते हैं। विद्युत अग्नि सूर्य की परमाणु शक्ति है, जो उसमें निरंतर होने वाले आणविक विखंडन से उत्पन्न होती है।

साधना-क्षेत्र में सूर्य के तीन स्वरूप हैं— आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक। इन सभी स्वरूपों की व्याख्या और रहस्यमय तत्त्वों का वर्णन छांदोग्य उपनिषद् में वर्णित मधुविद्या में प्राप्त होता है। इस उपनिषद् के तृतीय अध्याय, प्रथम खंड के प्रथम बारह मंत्रों में ब्रह्मविद्या अथवा मधुविद्या तथा सविता साधना की विस्तृत व्याख्या-विवेचना है।

भारतीय प्राचीन विद्याओं के प्रणेता ऋषि परम वैज्ञानिक थे। उन्होंने गूढ़ तत्त्वों के मर्म को उभारने के लिए समग्र दृष्टिकोण अपनाया। उनकी दृष्टि में ब्रह्मतत्त्व के अद्भुत रहस्य और स्वरूप को प्रकट करने वाली ब्रह्मविद्या का मर्म सविता—सूर्य साधना में समाहित है। सूर्य—स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण रूपों में सर्वत्र विद्यमान है। **'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे'** का मर्म हो या एक से अनेक बनने का ब्रह्म संकल्प— सबका मर्म इस सूर्यरूपी महाप्राण के स्वरूप में विद्यमान है।

सूर्य का शास्त्रीय नाम आदित्य है। इसका पहला स्वरूप आधिभौतिक है, जिसे परमाणु रूप में या आणविक विखंडन की ताप ऊर्जा शक्ति के रूप में हम सभी अनुभव करते हैं। भौतिक दृष्टि से सूर्य परमाणुओं की विशाल संगठित संरचना ही तो है। सूर्य का आधिदैविक रूप हैं आदित्य देवगण, जो दृश्य अर्थात प्रकाश विकिरण-ऊर्जाओं के स्तर पर सक्रिय चेतन शक्तियाँ हैं तथा आध्यात्मिक रूप है सर्वव्यापी चेतना—सविता ब्रह्म। यही सूर्य शक्ति का तात्त्विक स्वरूप है।

चेतना विज्ञान के मर्मज्ञ ऋषियों ने सूर्य के चारों ओर प्रदीप्त प्रकाश-किरणों को मधुनाड़ियाँ कहा है। इन नाड़ियों से भिन्न-भिन्न दिशाओं में प्रवाहित मधु की चर्चा की गई है। मधु विद्या के ज्ञाता एवं विशेषज्ञ आचार्यों ने चैतन्य विकिरण ऊर्जाओं की गति एवं दिशा का भी विवेचन किया है; जबकि आधुनिक भौतिकी में अभी तक प्रकाश गति की दिशा और उसके सापेक्ष वेग का निर्धारण करना संभव नहीं हो सका है।

सूर्य से निकलने वाली ऊर्जा शक्ति के मर्म को उद्घाटित करते हुए छांदोग्य उपनिषद् (3/2, 3, 4) में वर्णन है कि 'आदित्य की पूर्ववर्ती दिशा की किरणें ही इस अंतरिक्षरूपी छत के पूर्व दिशावर्ती छिद्र हैं। ऋचाएँ ही मधुकर हैं, ऋग्वेद ही पुष्प हैं, सोम आदि अमृत ही जल है। उन ऋक्रूप मधुकरों ने ऋग्वेद को अभितप्त किया है। अभितप्त ऋग्वेद से यश, तेज, इंद्रिय, वीर्य एवं अन्न का सार रूप रस उत्पन्न हुआ। वे सब आदित्य के पूर्व भाग में आश्रय पाकर वहीं उस आदित्य के लाल रूप में प्रतिष्ठित हैं।

पूर्ववर्ती दिशा की भाँति ही आदित्य की दक्षिण दिशा की किरणें दक्षिण दिशावर्ती मधुनाड़ियाँ हैं। यजुः श्रुतियाँ ही इसकी मधुकर हैं, यजुर्वेद ही पुष्प है, सोमादि जल हैं। पश्चिम छिद्रों से पश्चिमी दिशावर्ती किरणें ही मधुनाड़ियाँ हैं। साम श्रुतियाँ उनके मधुकर एवं सामवेद पुष्प हैं। उत्तर दिशा की ओर प्रवाहित किरणें उत्तरी मधुनाड़ियाँ हैं, अथर्वांगिरस उनके मधुकर और इतिहास पुराण पुष्प हैं।

पंचम दिशा ऊर्ध्व किरणों की है। इन ऊर्ध्व नाड़ियों के मधुकर 'गुह्य आदेश' हैं और ब्रह्म इनका पुष्प है। इन पंचदिशाओं के विकिरण-ऊर्जाओं की चेतना के मूल में सक्रिय पाँच देवगण हैं— वसुगण, रुद्रगण, आदित्यगण, मरुद्गण एवं साध्यगण। यह सूर्य का आधिदैविक स्वरूप है। इसी तरह भौतिक ऊर्जाओं के स्तर पर ये पाँच क्रम

हैं—रेडियो विकिरण-ऊर्जा, अवरक्त विकिरण-ऊर्जा, दृश्य विकिरण-ऊर्जा, एक्स विकिरण-ऊर्जा एवं गामा विकिरण-ऊर्जा।

उपनिषदों में प्रस्तुत आदित्य विद्या का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष है इसका आध्यात्मिक स्वरूप। इसमें सविता के चेतन ऊर्जा के प्रवाह अर्थात प्रकाश-किरणों के पाँच अंतरिक्षीय छिद्रों का उल्लेख किया गया है। उन्हें पाँच देवऋषि कहा गया है। उनसे प्रवाहित पाँच प्राण-प्रवाहों—प्राण, अपान, व्यान, समान एवं उदान का वर्णन है। अतः स्पष्ट है कि सर्वव्यापी चेतना शक्ति—सूर्य सविता जो संपूर्ण सृष्टि का महाप्राण है, उससे प्रवाहित पाँच प्राणधाराएँ ही पाँच अंतरिक्षीय छिद्रों से बहने वाली पाँच प्रकार की किरणें हैं।

यहाँ उल्लेखनीय है कि उपनिषद्कारों ने इस ब्रह्मविद्या आदित्य विज्ञान के मधुमय के रूप में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद का उल्लेख किया है, परंतु इसका तात्पर्य ग्रंथरूप वैदिक शब्द संहिताओं से नहीं, अपितु चेतना में परा एवं पश्यंती वाक् के रूप में प्रस्फुटित ज्ञान संवेदनाओं से है। ये श्रुतियाँ प्रकाशित हैं। सविता का सत्त्व ज्ञान, ज्ञान का सत्त्व श्रुति, श्रुतियों का सत्त्व परावाक् एवं पश्यंतीवाक् जो समस्त संसार के ज्ञान-विज्ञान का आधार हैं।

इस तरह मूल तत्त्व ब्रह्म और ब्राह्मीचेतना सविता का ज्ञान-विज्ञान, इतिहास-पुराण आदि विविध ज्ञानरूपों में अभिव्यक्त होते रहते हैं। ये सभी ज्ञानरूप सविता शक्ति के ही आयाम हैं, महाचेतना की ही चेतन ज्ञानधाराएँ हैं। इस सविता तत्त्व की उपासना ही गायत्री-साधना है।

गायत्री का उपास्य सविता यही चेतना ब्रह्म है। वेदों का उद्भव, सृष्टि का उद्गम, जीवन का संचार इसी गायत्री चेतना से संभव हुआ है, इसलिए शास्त्रों में पंचमुखी गायत्री शक्ति को आद्यशक्ति वेदमाता, देवमाता, विश्वमाता आदि नामों से पुकारा गया है।

गायत्री की उपासना में मंत्रजप करते समय सविता के ध्यान और मंत्र की ध्वनि को नाभिचक्र तक अनुभव करने का विधान शास्त्रों में वर्णित है। नाभिचक्र अर्थात सूर्यचक्र से गायत्री मंत्र का जप सूर्य की भाँति जीवन के समस्त अंधकारों का नाश करने वाला कहा गया है। सूर्य-उपासना भी गायत्री-साधना का ही विशेष आयाम है।

जिस तरह गायत्री से बुद्धि शुद्ध होकर ऋतंभरा प्रज्ञा में रूपांतरित हो जाती है, उसी प्रकार प्रत्यक्ष सूर्य उपासना से भी चित्त की पूर्ण शुद्धि होती है, लेकिन सूर्य विज्ञान को समझे बिना सीधे सूर्य-उपासना में प्रयुक्त होना दुष्कर है, अतः गायत्री-उपासना में सूर्य के सविता स्वरूप का ध्यान करते हुए साधना करना ही सर्वसुलभ और सहज है।

न तोयपूतदेहस्य स्नानमित्यभिधीयते।
स स्नातो यस्य वै पुंसः सुविशुद्धं मनो मतम्॥

अर्थात जल से देह के ऊपरी भाग को धो लेना ही स्नान नहीं है। स्नान तो उसका नाम है, जिससे बाहरी शुद्धि के साथ-साथ हम अपनी अंतःशुद्धि भी कर लें।

गायत्री की साधना अनिवार्यतः सविता शक्ति के तेज को भीतर धारण करने की अभ्यर्थना से जुड़ी हुई है और हम-आप सभी के लिए संसार में सविता का महाप्राण साक्षात् सूर्यदेव के रूप में प्रतिष्ठित है। गायत्री का प्रत्येक साधक इस मर्म को जानता है और सूर्य-उपासना में प्रवृत्त हो गायत्री के ज्ञानप्रकाश से अंतरात्मा को ज्योतिर्मय करता है। इस तरह सूर्यदेव ही एकमात्र ऐसे देव हैं, जिन्हें संसार के सभी मतावलंबी मानते हैं और माँ गायत्री की साधना आँखों के सामने प्रत्यक्ष उन्हीं जाग्रत देवता की साधना है। ❑

सबसे बड़ा धन—संतोष धन

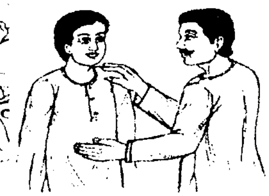

जीवन में असंतोष का अपना महत्त्व है। यदि व्यक्ति या समाज अपनी यथास्थिति से संतुष्ट होकर हाथ–पर–हाथ धरकर बैठ जाएँ तो उसकी सभ्यता–संस्कृति के विकास का मार्ग ही अवरुद्ध हो जाए। इस संदर्भ में असंतोष उचित माना जा सकता है, जहाँ उसके द्वारा जीवन की उन्नति–प्रगति एवं उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त होता है, लेकिन जब असंतोष के प्रेरक तत्त्व लोभ, अनावश्यक प्रतिद्वंद्विता और ईर्ष्या–द्वेष जैसे नकारात्मक भाव हो जाएँ तो यह जीवन की सुख–शांति को चौपट कर देता है।

आज चारों ओर ईर्ष्या–द्वेष और अस्वस्थ होड़ का बोलबाला है। जीवनमूल्यों के क्षरण और नैतिक पतन के कारण इनसान प्रतिद्वंद्विता की अंधी दौड़ में शामिल है। जो सहज रूप से उपलब्ध है, उसमें संतुष्ट नहीं, जबकि उससे जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ पूरी हो रही हैं, सामान्य जीवनयापन चल रहा हो लेकिन जब दूसरों से तुलना करने का, उनकी तरह ठाठ–बाट, महँगे शौक और वैभव प्रदर्शन का सिलसिला प्रारंभ हो जाता है तो फिर इसका कोई अंत नहीं।

असंतोष से जुड़ी समस्या यहीं से प्रारंभ हो जाती है। इस अंधी दौड़ में यह भी नहीं सूझ पड़ता कि दूसरे का जो वैभव या चमक–दमक दिख रही है, उसका यथार्थ क्या है। क्या वह ईमानदारी की कमाई है। यदि बेईमानी, भ्रष्टाचार या चापलूसी से रौब–दाब, प्रभाव या संपत्ति अर्जित है तो उसका क्या मोल। ऐसे में दूसरों की चिकनी–चुपड़ी रोटी से तो अपनी रूखी–सूखी ही श्रेष्ठ है, जिसमें मन की शांति–संतोष साथ में रहें और जीवन की सद्गति भी सुनिश्चित हो।

यदि दूसरे की कमाई ईमानदारी की है तो उसके वैभव–पद या प्रभाव के पीछे निहित अथक श्रम, त्याग–बलिदान और समर्पण से सीख लेने की आवश्यकता है। भाग्य या प्रारब्धवश यदि कोई फल–फूल रहा है तो वह भी अनायास ही नहीं होता। किन्हीं पुण्यकर्मों का सुफल वह भोग रहा होता है। ऐसे में उस व्यक्ति से तो प्रेरणा लेने की आवश्यकता है, जिसके आधार पर आप भी उचित कर्म एवं पुरुषार्थ के बल पर अभीष्ट उपलब्धि की ओर कदम बढ़ा सकें।

यदि प्रतिद्वंद्विता ही करनी है तो स्वयं से क्यों न की जाए। यही सर्वश्रेष्ठ रीति–नीति है। ईश्वर ने सभी को समान रूप से मनुष्य रूप में इतनी सारी विशेषताएँ दे रखी हैं, जो दूसरे प्राणियों के लिए दुर्लभ हैं। यहाँ तक कि स्वयं देवता तक इस मनुष्य–योनि के लिए तरसते हैं, जिसमें अभीष्ट पुरुषार्थ के आधार पर व्यक्ति जीवन के परमलक्ष्य मोक्ष की अवस्था तक को प्राप्त करने की सोच सकता है।

वास्तव में ईश्वर ने पहले ही इनसान को सब कुछ देकर धरती पर भेजा है। इतना क्षमतावान शरीर, कल्पनाशक्ति से युक्त मन, निर्णय लेने व योजना बनाने में सक्षम बुद्धि, परिस्थितियों को देखकर संवेदित, आंदोलित होने वाला हृदय, जिसके केंद्र में दैवी संभावनाएँ लिए स्वयं परमेश्वर विराजमान हैं।

इनके साथ इनसान अपनी संकल्पशक्ति के साथ मनचाही सृष्टि की रचना कर सकता है। बीज रूप में वह सारी क्षमताएँ ईश्वर ने दे रखी हैं, जिनके आधार पर वह महामानव, देवमानव बन

सकता है और दैवी संपत्ति का उचित अधिकारी बन सकता है।

इस पृष्ठभूमि में नश्वर सांसारिक वैभव-संपत्ति के लिए किसी से प्रतिद्वंद्विता में अपना समय और ऊर्जा नष्ट करने में कौन-सी समझदारी? जीवन की वास्तविक संपदा अंदर छिपी पड़ी है, उसको प्राप्त करने के लिए किससे प्रतिद्वंद्विता? आदर्शों का, श्रेष्ठता का, सेवा साधना का, त्याग-बलिदान का यह मार्ग तो खाली पड़ा है। जिसमें प्रतिदिन स्वयं के ही कीर्तिमान तोड़ने हैं और नित्यप्रति आत्मिक प्रगति एवं आंतरिक विकास के पथ पर ही अग्रसर होना है।

फिर मानव जीवन में पेट भरने के लिए दो रोटी, तन पर ओढ़ने के लिए कुछ कपड़े और सिर ढकने के लिए मकान की एक छत काफी होती है, लेकिन इनसान अपनी बहकी-भटकी कामनाओं, लिप्साओं के कारण अल्प में संतुष्ट नहीं होता, यहाँ तक कि लाखों, करोड़ों के घोटालों तक को अंजाम दे रहा होता है, जिसमें अगली कई पीढ़ियों की बरबादी के सरंजाम जुटा बैठता है। ऐसे धन से संस्कारवान पीढियों की आशा नहीं की जा सकती, जो अपनी जिम्मेदारी को सँभाल सके, दूसरों के दु:ख-कष्ट को समझकर इस मानव जीवन का सदुपयोग कर सके।

इसी तरह वासना, तृष्णा और अहंता की खाई अनंत है, जिसे आज तक कोई पाट नहीं सका। पूरे जीवन को, आत्मा को भी इनके निमित्त झोंक दें, तो भी ये पूरी होने वाली नहीं। इस पृष्ठभूमि में थोड़ा चिंतन-मनन करने पर जीवन का आध्यात्मिक लक्ष्य स्पष्ट हो जाता है और संतोष का महत्त्व समझ आता है। योग दर्शन में वर्णित यम-नियम के अंतर्गत अपरिग्रह, अस्तेय, संतोष जैसे जीवनमूल्य स्वत: ही जीवन के अंग बनने लगते हैं, क्योंकि यही जीवन में शांति-सद्गति का स्वाभाविक सहज राजमार्ग हैं।

जीवन का मूल तथ्य आत्मसंतोष के साथ परोपकार है। अर्जित आय का एक अंश स्वयं के निमित्त लगाते हुए, शेष का परोपकार में नियोजन ही श्रेष्ठ मार्ग है। जो जरूरतमंद हैं, उनकी सेवा-सहायता और शुश्रूषा की जाए। पीड़ा-पतन के निवारण में जो कुछ बन पड़े, अपना समय, अंश, प्रतिभा और प्रभाव आदि का नियोजन किया जाए। इसी के साथ समझ आता है कि परिवार के लिए भी कुछ समय दिया जाए और बच्चों को श्रेष्ठ संस्कार देने की योजना पर अनवरत काम किया जाए।

आज माता-पिता और अभिभावकों के पास बच्चों के लिए समय का नितांत अभाव है। विचार करने की आवश्यकता है कि कहीं हम धन-दौलत, नाम, वैभव के पीछे अंधी दौड़ में तो शामिल नहीं हो रहे हैं, जिसमें जीवन का शांति-संतुलन सभी दाँव पर हैं।

इस नश्वर जीवन में यह उपलब्धि किस काम की? यदि अचानक भगवान के पास से बुलावा आ जाए; क्योंकि यह भी जीवन का एक कटु सत्य है, कभी भी ऊपर से निमंत्रण आ सकता है—वैसे में इसका सुमिरन भी संतोष से भरे जीवन की प्रबल प्रेरणा देता है।

फिर असंतोष की अग्नि में हम वर्तमान में नहीं होते, भूत के पश्चात्ताप या फिर भविष्य की चिंता में भी दग्ध हो रहे होते हैं। जबकि भूत का कोई मोल नहीं, और भविष्य को किसी ने देखा नहीं। भूत से तो सिर्फ सबक लिए जा सकते हैं और भविष्य को वर्तमान के आधार पर सँवारा जा सकता है।

इसके लिए आवश्यकता दृष्टिदोष के सुधार की है। आध्यात्मिक जीवन-दृष्टि को अपनाएँ, जो हाथ में है, उसकी सुध लें और व्यवहारवादी रीति-नीति को अपनाते हुए उपलब्ध बहुमूल्य समय का सदुपयोग करते हुए जीवनलक्ष्य सिद्ध करें। ❑

अपनी राह चला लो गुरुवर

एक बार बुद्ध के शिष्य मोग्गल्लान ने बुद्ध से पूछा—''भगवन्! क्या आपके सभी अनुयायी संसार के सभी दु:खों से निश्चित रूप से मुक्त हो जाएँगे?'' तब बुद्ध ने उस शिष्य के प्रश्न के उत्तर में कहा—''वत्स! तुम्हारे प्रश्न के उत्तर में मेरा तुमसे एक सीधा-सा प्रश्न है और वह प्रश्न यह है कि क्या तुम राजगृह का रास्ता जानते हो?'' मोग्गल्लान ने कहा—''हाँ भगवन्! मैं राजगृह का रास्ता जानता हूँ, क्योंकि मैं राजगृह जा चुका हूँ। मैं राजगृह में जाकर घूमा हूँ, टहला हूँ और राजगृह से परिचित भी हूँ।''

मोग्गल्लान ने कहा—''यह जो सड़क यहाँ से जा रही है, यह राजगृह ही तो जाती है। इस सड़क पर, इस मार्ग पर चलेंगे तो कुछ दूर चलकर अमुक गाँव आएगा और आगे चलकर एक उपवन मिलेगा। उस रास्ते पर आगे बढ़ते जाने पर कई मनोहारी प्राकृतिक दृश्यों के दर्शन होंगे और अंतत: हम उसी रास्ते पर आगे बढ़ते हुए राजगृह में प्रवेश कर पाएँगे।''

मोग्गल्लान की बातें सुनकर बुद्ध बोले—''मोग्गल्लान! संभव है कि तुम्हारे बताए रास्ते पर चलकर कोई राही राजगृह पहुँच जाए, लेकिन हो सकता है कि कोई दूसरा राही रास्ता भटक जाए और वह वहाँ न पहुँच सके।'' बुद्ध की बातें सुनकर मोग्गल्लान ने कहा—''क्या यह भी मेरा काम है, गुरुदेव! मेरा काम तो बस, राजगृह जाने का रास्ता बताने का था सो मैंने रास्ता बताया अब जो उस रास्ते पर चलेगा, वह अवश्य ही राजगृह पहुँचेगा, पर जो उस रास्ते पर चलकर बीच में ही भटक जाए तो इसमें भला मेरा क्या अपराध है? मेरा काम तो मात्र रास्ता बताने का ही है।''

बुद्ध मुस्कराए और बोले—''तुम्हारे प्रश्न का भी यही उत्तर है वत्स! तुम्हारा प्रश्न है कि क्या बुद्ध के सभी शिष्य, सभी अनुयायी संसार के दु:खों से निश्चित रूप से मुक्त हो जाएँगे? तो वत्स! यह भली भाँति समझ लो कि मैं भी केवल रास्ता दिखाता हूँ। मेरे कुछ अनुयायी पहुँच जाते हैं और कुछ नहीं पहुँचते। गुरु का काम सिर्फ रास्ता दिखाना है।'' गौतम बुद्ध की बातें सुनकर मोग्गल्लान को अपने प्रश्न का उत्तर मिल गया था। वे अपने गुरु के चरणों में नतमस्तक हुए और उनके बताए मार्ग पर चलने को तत्पर हुए।

वास्तव में गुरु और शिष्य के उक्त वार्त्तालाप का निहितार्थ यही है कि यह अलग-अलग लोगों पर निर्भर करता है कि वे अपने गुरु के बताए मार्ग पर कितनी श्रद्धा से, विश्वास से, कितनी तेजी से और कितनी दूर तक जा सकते हैं। जिन्हें अपने गुरु के वचनों पर पूर्ण भरोसा होता है वे अपनी संपूर्ण शक्ति व मनोयोग से गुरु के मार्ग पर चल पड़ते हैं। जिन्हें अपने गुरु में पूर्ण श्रद्धा होती है वे अपने मन में उठने वाले समस्त शंकाओं, संदेहों को तजकर अपने गुरु के बताए मार्ग पर बढ़ते जाते हैं।

गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धा, भक्ति के कारण समस्त प्रकृति, समस्त सृष्टि उस शिष्य के अनुकूल हो जाती है और उसके मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करती जाती है। गुरुचेतना, परमात्मचेतना उसके लिए सहायक बन जाती है और अंतत:

शिष्य भगवत्प्राप्तिरूपी परमलक्ष्य को प्राप्त कर परम आनंदित हो जाता है।

सतत भगवच्चिंतन, भगवद्ध्यान करते हुए ही साधक-शिष्य निर्वाण, मोक्ष, भगवत्प्राप्ति कर सकता है और गुरु साधक को, शिष्य को भगवत्प्राप्ति के मार्ग का पथ-प्रदर्शन कर सकता है; क्योंकि उसने ब्रह्मपद प्राप्त किया हुआ है। इसलिए वह उस मार्ग को बखूबी जानता है। इसलिए हमें गुरु के आदेशों का अक्षरश: पालन करना चाहिए। उनमें पूर्ण श्रद्धा व भक्ति रखनी चाहिए, पर जिनमें गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धा नहीं, भक्ति नहीं, प्रेम नहीं, अनुराग नहीं और जिनके मन में संदेह-ही-संदेह होते हैं, वे उस रास्ते पर शरीर से चलते हुए भी मन से नहीं चल रहे होते हैं।

वे राह में मिलने वाले काम, लोभ, मोहरूपी प्रलोभनों, आकर्षणों में उलझकर रास्ता भटक जाते हैं। गुरु और भगवान के प्रति सच्ची श्रद्धा, भक्ति न होने के कारण, उनके मनोबल, आत्मबल बड़े कमजोर होते हैं, जिससे वे उन प्रलोभनों से, आकर्षणों से मुक्त नहीं हो पाते। वे उन बाधाओं को पार नहीं कर पाते और रास्ता भटक जाते हैं।

गुरुदेव के द्वारा बताया गया मार्ग ही राजगृह पहुँचने का सही मार्ग है। यहाँ 'राजगृह' का आशय भगवत्प्राप्ति से है, ब्रह्म साक्षात्कार से है, मुक्ति से है, निर्वाण से है। गुरुदेव ने जो मार्ग बताया है वह मार्ग ही भगवान तक पहुँचने का सही मार्ग है, मुक्ति, निर्वाण पाने का सही पथ है। गुरुदेव ने जो उपासना-साधना-आराधना, स्वाध्याय, संयम, सेवा आदि साधन बताए हैं, उनका अक्षरश: पालन करते रहना ही भगवत्प्राप्ति के मार्ग पर चलते रहना है और जो भी शिष्य, साधक, भक्त इस मार्ग पर संपूर्ण श्रद्धा-विश्वास, भक्ति के साथ धैर्यपूर्वक नियमित रूप से चल रहा है, उसके लिए परमात्मप्राप्ति, परमपदप्राप्ति, परमानंद की प्राप्ति रूप लक्ष्य सन्निकट ही है—इसमें कोई संदेह नहीं।

जो सिर्फ गुरु के बताए मार्ग की चर्चा मात्र कर रहे हैं, उस मार्ग पर चल नहीं रहे उनका राजगृह पहुँच पाना अर्थात ब्रह्मप्राप्ति कर पाना अवश्य ही असंभव है। राजगृह तो राजगृह जाने वाली सड़क पर चलते रहने से ही पहुँचा जा सकता है। भगवत्प्राप्ति भी भगवान के रास्ते पर चलकर ही की जा सकती है। हमें साधना में सफलता चाहिए तो पूज्य गुरुदेव से यही प्रार्थना करना चाहिए कि वे हमें अपनी राह पर चला दें। ❑

सुप्रसिद्ध दार्शनिक जानजे से उनके मित्र ने पूछा—''मित्र! दुनिया में इतनी अराजकता फैली हुई है। यदि यह दुनिया भगवान की बनाई हुई है तो वह दुनिया की व्यवस्था ठीक क्यों नहीं करता ?''

जानजे ने उत्तर दिया—''मित्र! हमारा कार्य अपने कर्त्तव्य का ईमानदारी से पालन करना है और भगवान का कार्य संसार की व्यवस्था देखना है। हमें हमारा कार्य करना चाहिए और भगवान का कार्य भगवान पर छोड़ देना चाहिए।'' यदि हर व्यक्ति ईमानदारी से उसको दिए गए दायित्वों की पूर्ति सही ढंग से करता रहे तो संसार में सुव्यवस्था स्वत: ही आ जाएगी। अव्यवस्था का मूल कारण लोगों में जिम्मेदारी व दायित्वबोध का अभाव है।

सकारात्मक मन:स्थिति की ओर बढ़ें

विचारों की शक्ति सर्वोपरि है। जैसा हम लगातार सोचते हैं, वैसा ही कर्म बन पड़ता है और कर्म के अनुरूप ही जीवन की नियति तय होती है। यदि हम वर्तमान से संतुष्ट नहीं हैं तथा जीवन को अभीष्ट दिशा की ओर बढ़ता नहीं देख पा रहे, तो अपने चिंतन पर एक बार अवश्य झाँककर देख लें कि दिनभर अधिकांश समय हमारी मन:स्थिति कैसी रहती है—हमारे विचार सकारात्मक रहते हैं या नकारात्मक।

यदि नकारात्मक अधिक हैं, तो विषय चिंता का है, क्योंकि ईश्वर के इस विशिष्ट उपहार को बोझ की तरह ढोना अपनी ईश्वरीय संभावनाओं का अपमान है और ईश्वरीय विधान की अवमानना भी। इस पर समय रहते आवश्यक कदम उठाना समझदारी वाला कदम माना जाएगा।

नकारात्मक चिंतन के साथ व्यक्तित्व तमाम तरह के दोषों से ग्रस्त होने लगता है। जीवन में भय, चिंता, संशय, छिद्रान्वेषण, ईर्ष्या-द्वेष, परदोषारोपण, अधीरता व अशांति-उद्वेग जैसे अवांछनीय भाव हावी होने लगते हैं, जिनके दुष्प्रभावों से जीवन की गुणवत्ता बुरी तरह से प्रभावित होने लगती है। नकारात्मक सोच के चलते अधिकांशत: निर्णय हम गलत ले बैठते हैं और अवसरों को पहचानने में भी चूक हो जाती है। ऐसे में जो अवसर व्यक्ति के विकास के लिए आए थे, जीवन में खुशहाली और प्रसन्नता का प्रसून खिलाने वाले थे, वे उन्हीं से हाथ धो बैठते हैं।

नकारात्मक चिंतन के कारण व्यक्ति की सोच एकतरफा हो जाती है, जीवन की सम्यक समझ से व्यक्ति वंचित हो जाता है। ऐसे में अपने संकीर्ण दायरे तक सिमटा जीवन, अस्तित्व के बृहत्तर फलक के अवदानों से रीता ही रह जाता है। व्यक्ति अपने मानसिक कुनबे में रहने का आदी हो जाता है, उससे बाहर नहीं निकलना चाहता। जीवन की चुनौतियों से बचता फिरता है और एक असफल जीवन जीने के लिए अभिशप्त होता है। दूसरे जब उसी क्षेत्र में बाजी मार ले जाते हैं, तो स्वयं को अभागा समझता है तथा अपने भाग्य को कोसने लगता है।

नकारात्मक सोच के कारण आत्मविश्वास की कमी रहती है, जिसके चलते जीवन के यथार्थ का सामना नहीं कर पाता तथा दूसरों से जो सम्मान की अपेक्षा रखते हैं, वो नहीं मिल पाता। ऐसे में मन:स्थिति मलाल व गहरी कुढ़न से भरी हो जाती, जिसमें यह पीड़ा रहती है कि लोग हमारा सम्मान नहीं करते, हमारे प्रभाव को पूर्णतया स्वीकार नहीं करते।

नकारात्मक चिंतन के कारण व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की मूलभूत कमियों को देख-समझ नहीं पा रहा होता है और इनका कारण बाहर खोजता फिरता है और मन के बहलावे के लिए ऐसे ढेरों प्रमाण मिल भी जाते हैं, जिनकी छद्म संतुष्टि के सहारे व्यक्ति स्वयं को छलता रहता है, लेकिन भीतर-ही-भीतर एक कुंठा व हताशा के भाव से सुलगता रहता है।

निश्चित रूप से मन की इस सब कश-मकश का स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ऐसे में चिंता, भय, हताशा, उद्वेग जैसे नकारात्मक भावों से

युक्त मन:स्थिति व्यक्ति को तनाव में रहने के लिए विवश करती है। नाना प्रकार के मनोकायिक रोगों के साथ स्वास्थ्य प्रभावित होने लगता है। इस मन:स्थिति में जीवन की परीक्षाएँ जो हर पल, हर दिन आती रहती हैं, उनका सामना करने का धैर्य, जीवट व ऊर्जा भी नहीं बचती और व्यक्ति प्राय: जीवन की परीक्षा में स्वयं को अनुत्तीर्ण पाता है। परिस्थितियाँ मन:स्थिति पर हावी रहने लगती हैं और इनके नकारात्मक प्रभावों से जीवन आक्रांत रहता है।

ऐसे में स्वयं के प्रति अत्यधिक आलोचनात्मक रवैये की आदत पड़ सकती है, जिसके कारण चिंतन के बजाय चिंता मन का स्वभाव बनने लगता है। व्यक्ति अतिचिंतन का शिकार हो जाता है, जिससे आवश्यकता से अधिक आत्मविश्लेषण में समय व्यतीत करने लगता है। योजना अधिक, कार्य कम की स्थिति बन जाती है और जीवन व्यावहारिक धरातल पर सफलता से कोसों दूर रह जाता है तथा जीवन को सार्थक दिशा देने वाली दशा नहीं बन पाती। इसी स्थिति में अधिकांश लोग तमाम तरह के नशों व दुर्व्यसनों के शिकार हो जाते हैं, जो सामयिक राहत देते प्रतीत होते हैं, लेकिन वे जीवन को बरबादी की दलदल में और गहरा धँसाते जाते हैं।

इस स्थिति में व्यक्ति अवचेतन मन को दुर्बल बना रहा होता है। सुपरचेतन क्षमताओं से जोड़ने वाला गुप्त मन ऐसे में कुंद पड़ने लगता है। व्यक्ति स्वयं से संपर्क खो बैठता है और स्वयं से स्वस्थ-संतुलित संवाद की स्थिति नहीं बन पाती। नकारात्मक स्व-संवाद का हाहाकार अंत:करण में गूँजता रहता है। इस मन:स्थिति में यदि ईश्वरीय आस्था भी डाँवाडोल हो गई तो फिर जीवन में चमत्कार की आशा धूमिल हो जाती है, जो जीवन के दैवी स्रोत से जुड़ने पर घटित होती है।

उपरोक्त स्थिति जीवन को विकट बना देती है। इससे कैसे उबरें, यह विचारणीय हो जाता है। इसमें शुरुआत स्वयं के ईमानदार मूल्यांकन से हो सकती है कि हमारी यह स्थिति क्यों बन पड़ी या क्या हम किसी समर्थ मार्गदर्शन का सहारा ले सकते हैं, जो हमें जीवन के यथार्थ बोध के साथ दिशाबोध करा सके। प्राय: आध्यात्मिक शास्त्रों तथा महापुरुषों के सत्संग या इनके स्वाध्याय से इसमें बहुत सहायता मिलती है।

इसके साथ ईश्वर पर पूर्ण आस्था रखें कि वह जो भी कुछ कर रहा है अच्छा ही कर रहा है, आपके लिए हितकर होगा। साथ ही अपने कर्म के परिणाम को स्वीकार करें, इससे जुड़े सबक को सीखें तथा इनको अपनाएँ। जहाँ पुरुषार्थ चूक जाए, प्रार्थना का सहारा लें। सतत आत्मचिंतन व ईश्वरीय सुमिरण से हमारे अवचेतन मन की अकूत शक्ति सक्रिय हो जाती है, जो देह-मन की सीमित शक्ति-सामर्थ्य के बहुत आगे हमें जीवन की चुनौतियों तथा समस्या का सामना करने में सक्षम बनाती है और ये हमारे आंतरिक विकास का अवसर बन जाती हैं।

इसके साथ तन-मन के स्वास्थ्य के लिए न्यूनतम क्रम निर्धारित करें। शरीर को व्यायाम तथा समुचित आहार-विश्राम के साथ पुष्ट रखें, क्योंकि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन वास करता है। मन को श्रेष्ठ विचारों में रमण का अभ्यासी बनाएँ, जिसके लिए श्रेष्ठ पुस्तकों का सहारा ले सकते हैं। ये बौद्धिक विकास एवं जीवन में आगे बढ़ने का आधार बनेंगे तथा स्वस्थ तन-मन के इन्हीं सबल आधार पर आत्मतत्त्व की खोज आगे संभव होती है।

अपने कर्त्तव्य का पालन पूरी ईमानदारी और जिम्मेदारी के साथ करें। खाली समय में जो पसंद हो उसे करें, स्वयं को व्यस्त रखें। दूसरों के साथ मिल-जुलकर सहयोग-सहकार की रीति-नीति अपनाते हुए रहें। प्रेरक लोगों से जुड़े रहें। जरूरतमंदों की सहायता करें, यह अपना दरद भूलने का एक श्रेष्ठतम तरीका रहता है।

इस तरह जो श्रेष्ठतम कर सकते थे, वो करें, उसका संतोष अनुभव करें और जो अपनी शक्ति-सामर्थ्य के बाहर है, उसे परमपिता परमेश्वर पर छोड़ दें और एक हलका-फुलका हँसता-हँसाता जीवन जिएँ।

इस तरह सकारात्मक चिंतन का सहारा लेते हुए, नकारात्मक दशा से बाहर आएँ। शांति-आनंद के स्रोत से जुड़ते हुए जीवन की यात्रा का आनंद लें तथा नकारात्मकता से भरे इस संसार में सकारात्मकता का प्रकाश फैलाएँ।

❑

आजीवन सदस्य कृपया ध्यान दें

आपने जब आजीवन सदस्यता स्वीकार की थी, तब से अब तक महँगाई इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि पत्रिका की आजीवन सदस्यता का निर्वहन कर पाना कठिन हो रहा है। अब पूर्व की सुरक्षानिधि में आजीवन सदस्यता बनाए रखना संभव नहीं जान पड़ता। जो सदस्य रुपये 150 (सन् 1982) में बने थे, उन्हें अभी तक पत्रिका भेजी जा रही है; जबकि वार्षिक चंदा रुपये 15 (सन् 1982) से बढ़कर रुपये 300 हो गया है—भविष्य में और बढ़ता रहेगा। ऐसी स्थिति में आजीवन सदस्यता को पुरानी शर्तों पर जारी नहीं रखा जा सकेगा।

अब नई व्यवस्था के अनुसार आजीवन सदस्यता 20 वर्ष तक सीमित रहेगी। उसका अब चंदा रुपये 6000/- होगा। हम सबकी यही अपेक्षा है कि जो श्रद्धा-स्नेह का संबंध लंबे समय से बना हुआ है, वह और भी प्रगाढ़ होगा। अखण्ड ज्योति का आलोक आपको एवं अन्य परिजनों को आलोकित करता रहेगा।

इसके लिए हम आपके समक्ष निम्न विकल्प प्रस्तुत कर रहे हैं—

(1) आपका आजीवन शुल्क जो भी जमा है, उसे काटकर शेष रुपया और भेज दें, ताकि आपकी आजीवन सदस्यता (20 वर्षीय) बनी रहे। राशि बैंक ड्राफ्ट/चैक/RTGS/NEFT से भेजी जा सकती है। **राशि भेजने के लिए बैंकों का विवरण पत्रिका में पृष्ठ सं. 58 पर दिया गया है।**

(2) आपकी आजीवन सदस्यता समाप्त कर दी जाए एवं जमा सुरक्षानिधि वार्षिक चंदा में ट्रांसफर कर दी जाए। उस राशि से वार्षिक चंदा रुपये 300/- के हिसाब से जब तक का चंदा बने अखण्ड ज्योति भेज दी जाए।

(3) यदि किन्हीं कारणोंवश ऐसा संभव न हो पा रहा हो तो अपने बैंक खाते की जानकारी भेजने का अनुग्रह करें, जिससे आपको राशि वापस भेजी जा सके। विवरण मिलने पर आपके खाते में सीधे रुपया भेज दिया जाएगा।

पत्र व्यवहार में अपनी सदस्य संख्या, नाम, पता, फोन नंबर, ई-मेल का उल्लेख अवश्य करें।

आप सबको पत्र द्वारा सूचित किया जा चुका है, संभव है किसी कारणवश पत्र न मिला हो। अपनी सहमति का पत्र डाक/ई-मेल द्वारा भेजने का अनुग्रह करें।

—अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा-281003
Email-akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

आचार्य शंकर की गोमुखयात्रा

तीर्थयात्रा के क्रम में आचार्य शंकर अपने शिष्यों के साथ गोमुख की ओर चल पड़े थे। गोमुख का मार्ग गंगोत्तरी से कहीं अधिक दुर्गम और कष्टप्रद था। चारों ओर हिम से ढके हुए बस पर्वत-ही-पर्वत दिखाई पड़ रहे थे, पर हृदय में पतितपावनी गंगाजी के उद्‌गमस्थल-गोमुख धाम के दर्शन की लालसा लिए सभी तीर्थयात्री मार्ग की तमाम बाधाओं के बाद भी आगे बढ़ते जा रहे थे।

चलते-चलते कइयों के पाँव में छाले पड़ गए थे तो कइयों की नाक से रुधिर भी निकलने लगा था, पर आचार्य शंकर के साथ अन्य सभी तीर्थयात्री 'गंगा मैया की जय', 'सुरसरि भागीरथी गंगा की जय' बोलते हुए आगे बढ़े चले जा रहे थे। तभी सबने देखा कि सामने ही गोमुखाकृति स्थान से सुरसरि भागीरथी गंगा, हिमालय की गोद से निकलकर प्रबल वेग से प्रवाहित होती हुई आगे बढ़ी जा रही थीं। बड़े-बड़े हिमशिला खंड भी उस जलस्रोत के साथ बहे जा रहे थे। चारों ओर बरफ-ही-बरफ दिखाई पड़ रही थी।

आचार्य शंकर एक शिला पर बैठकर सुरसरि भागीरथी गंगा के स्वर्गीय रूप को देखते ही गहन ध्यान-समाधि में डूब गए। अपने गुरु को ध्यान में बैठा देख अन्य सभी शिष्य भी आस-पास की शिलाओं पर बैठकर सुरसरि गंगा के स्वर्गीय रूप व सौंदर्य को कुछ पल तक अपलक नेत्रों से देखते हुए उस स्वर्गीय छवि का अपने हृदय में ध्यान करने लगे। कुछ देर के पश्चात आचार्य शंकर के साथ ही सभी शिष्यों ने आँखें खोलीं।

आचार्य शंकर ने शिष्योंसहित पतितपावनी माँ गंगा की स्तुति की और शिष्यों को संबोधित करते हुए कहने लगे—''वत्स! ऊपर पर्वतों पर जमी हुई बरफ, सूर्य के ताप से पिघलकर गोमुख से निकलती जलधारा में मिल जाती है और आगे बढ़ते हुए बड़ी जलधारा भागीरथी गंगा कहलाती है। राजा भगीरथ की प्रचंड तपस्या के फलस्वरूप स्वर्ग से धरा पर अवतरित हुई भागीरथी गंगा परममोक्षदायिनी हैं। गंगा की दिव्य ज्योति ही गंगाजल के रूप में प्रवाहित हो रही है। इसलिए इसके दर्शन मात्र से मन में पवित्रता, प्रफुल्लता व शांति का स्वतः ही संचार होता है।

''जो इस गंगाजल में दिव्य व पवित्र भाव के साथ स्नान करता है उसकी चित्तशुद्धि होती है और आत्मा में ब्रह्मानंद की अनुभूति होती है। गंगा साक्षात् ब्रह्मस्वरूपा हैं। गंगास्नान व गंगा का ध्यान करने से साधक को अपनी आत्मा में ब्रह्मानंद की अनुभूति होती है। गंगा की इसी महिमा के कारण भगीरथ ने गंगा को धरा पर अवतरित कराने के लिए कठोर तप किया था। तब भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर सुरसरि गंगा धरा पर अवतरित होने को तैयार हुई थीं।

''चूँकि धरती गंगा के प्रबल वेग को सहन नहीं कर पाती, इसलिए भगीरथ ने माँ गंगा के कहने पर ही भगवान शिव की आराधना भी की थी और उनसे सुरसरि गंगा को अपनी जटा में धारण करने की प्रार्थना की थी। तभी सुरसरि गंगा शिव की जटा से धरा पर अवतरित हुई थीं। भगीरथ

की लोक-कल्याण की भावना के कारण ही गंगा धरा पर आने को सहर्ष तैयार हुई थीं। लोक-कल्याण के लिए की गई तपस्या से देवी-देवता निस्संदेह प्रसन्न होते हैं।

''राजा भगीरथ के परम तप, प्रचंड तप से प्रसन्न होकर सुरसरि गंगा मृत्युलोक में आईं, इसलिए गंगा का एक नाम भागीरथी भी है। धरा पर गंगा के अवतरित होने से और गंगाजल के स्पर्श से ही भगीरथ के शापित पूर्वजों का उद्धार हुआ था और उन्हें मुक्ति प्राप्त हुई थी। वह भागीरथी गंगा तभी से जन-जन के उद्धार व मुक्ति के लिए इस धरा पर अविरल, अविराम प्रवाहित हो रही हैं। गंगा अनेक ग्रामों व नगरों को पवित्र करती हुईं, अनेक तीर्थों को स्पर्श करती हुई आगे बढ़ती जाती हैं।''

आचार्य शंकर ने शिष्यों को समझाते हुए पुनः कहा—''हजारों मीलों का पथ पार करती हुई गंगा गंगासागर में, समुद्र में मिल जाती हैं। गोमुख से गंगासागर के बीच गंगा के कारण ही अनेक तीर्थों का उद्गम हुआ है। ब्रह्मानंद और मोक्षप्राप्ति तथा जन-कल्याण की भावना से अगणित साधकों, तपस्वियों, ऋषियों, मुनियों ने गंगा के तट पर बैठकर तपस्या की है, साधना की है और परिणामस्वरूप ब्रह्मानंद व मोक्षप्राप्ति कर सकने में सफल हुए हैं। अगणित तपस्वियों ने गंगा किनारे कुटिया बनाकर नित्य गंगास्नान व गंगाजल का आचमन कर कठोर तपस्याएँ की हैं और ब्रह्मानंद की प्राप्ति की है। आज भी अगणित साधक गंगा तट पर साधना में लीन हैं।''

आचार्य शंकर के शिष्य प्रभृति ने कहा—''गुरुदेव! गंगा को अपनी तपस्या से धरा पर लाने वाले राजा भगीरथ का नाम भी अमर हो गया।'' आचार्य शंकर बोले—''हाँ वत्स! यह सच है कि जो कोई भी लोक-मंगल, लोक-कल्याण की भावना से कुछ करता है, वो अमर हो जाता है। भगीरथ की तपस्या भी लोक-मंगल के लिए थी, इसलिए वे अमर हो गए। अविरल बहती हुई गंगा निरंतर दूसरों को लाभ पहुँचाने के लिए ही आगे बढ़ रही हैं और यह उपदेश भी दे रही हैं कि चाहे कितना भी कष्ट क्यों न उठाना पड़े, पर दूसरों को लाभ पहुँचाने के लिए आगे बढ़ते रहो। इससे स्वयं के साथ-साथ दूसरों का कल्याण भी होता है।''

उस स्थान से उठकर सभी लोग गोमुख के बिलकुल निकट पहुँचे और वहाँ सुरसरि गंगा का स्वर्गीय रूप देखकर अभिभूत हो गए। शंकराचार्य के साथ सबने माँ गंगा की स्तुति की और गंगा में स्नान कर पूजन किया और पुनः ध्यान में बैठ गए। सभी भगवती भागीरथी गंगा का दर्शन कर अभिभूत थे, आह्लादित थे, आनंदित थे। ध्यान से उठने के पश्चात सभी 'भगवती भागीरथी गंगा की जय, माँ गंगा की जय, पतितपावनी गंगा की जय' आदि जयघोष करते हुए वापस चल पड़े।

मार्ग में रह-रहकर हिमशिखरों से बड़ी-बड़ी हिम-चट्टानों के गिरने की आवाज आ रही थी। हर कदम पर खतरा-ही-खतरा था। पद्मपाद अपने गुरु की छाया बन चल रहे थे। आपस में बातचीत करते हुए वे कह रहे थे—''हमारे बड़े भाग्य थे, जो गोमुख के दर्शन हुए।''

पाँवों के छालों पर पहाड़ी जड़ी का लेप करते हुए दूसरा तीर्थयात्री बोला—''मार्ग में कितने संकट आए, कितनी बाधाएँ आईं।'' किसी ने अपनी नाक से निकले रुधिर को दिखाते हुए कहा—''गोमुख का मार्ग बड़ा कष्टप्रद और दुर्गम है।'' बातचीत करते-करते वे सभी गंगोत्तरी पहुँच चुके थे।

ज्योतिर्धाम नरेश के सेवकों ने वहाँ सबके लिए भोजन और विश्राम की व्यवस्था की थी। आचार्य शंकर उस समय आहार के रूप में दुग्ध,

फल और जल ही लेते थे। तीर्थयात्रियों की दु:खगाथा सुनकर शंकराचार्य को भी दु:ख हो रहा था और वे मन-ही-मन सोच रहे थे कि गोमुख की यात्रा करना और दर्शन करना सबके लिए सरल नहीं है। बड़ा कठिन और दुर्गम पथ है। संकटों से भरा पथ है। अत: क्यों न गंगोत्तरी में ही गंगादेवी का मंदिर बनवा कर उनकी मूर्ति प्रतिष्ठित की जाए।

यही सोचते-सोचते आचार्य शंकर निद्रा में चले गए। प्रात:काल जब ज्योतिर्धाम नरेश अपने गुरु आचार्य शंकर की चरणवंदना करने पहुँचे तब उन्होंने आचार्य शंकर को उदास देखा।

वे बोले—"गुरुदेव! आपके कमल के समान खिले मुख पर आज यह उदासी के बादल क्यों छा गए?" आचार्य बोले—"राजन्! गोमुख यात्रा के दौरान तीर्थयात्रियों को जो कष्ट हुआ है उससे मुझे बहुत पीड़ा हुई है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि गंगोत्तरी में ही तीर्थयात्रियों के लिए माँ गंगा का मंदिर बना उसमें मूर्ति की प्राण-प्रतिष्ठा कर दी जाए। साथ ही वहीं पर शिवलिंग, यमुना व सरस्वती देवियों की मूर्ति भी स्थापित कर दी जाए। गंगोत्तरी में ही गंगादेवी और शिवजी का दर्शन करके तीर्थयात्रियों को गोमुख दर्शन का फल प्राप्त हो जाएगा।"

अपने गुरु की इच्छा को जानकर ज्योतिर्धाम नरेश राजा सुधन्वा ने कहा—"गुरुदेव! मैं कारीगरों को बुलाकर अविलंब मंदिर का निर्माण आरंभ करवाता हूँ।" देखते-ही-देखते वहाँ एक भव्यमंदिर का निर्माण हो गया। शंकराचार्य ने प्रसन्न होकर स्वयं वहाँ गंगाजी और शिवजी की मूर्ति की प्रतिष्ठा की। साथ ही वहाँ यमुना व सरस्वती आदि देवियों की मूर्तियों की भी प्रतिष्ठा की। वहाँ राजा भगीरथ की प्रतिमा भी स्थापित की गई। शंकराचार्य यह देखकर व सोचकर बहुत प्रसन्न हुए कि अब तीर्थयात्रियों को गोमुख जाने का कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा और गंगोत्तरी का दर्शन करके ही उन्हें गोमुख दर्शन का लाभ प्राप्त हो सकेगा।

सभी तीर्थयात्री गंगोत्तरी में स्थापित नए मंदिर में गंगा, यमुना, सरस्वती व शिव भगवान के दर्शन व पूजन कर अभिभूत हुए और उनके जयघोष से मंदिर गूँज उठा। वे सभी वहाँ से लौटते हुए उत्तरकाशी की ओर बढ़ चले। उन सबकी तीर्थयात्रा सफल हो चुकी थी। ❑

एक राजा सिद्ध संत गरीबदास के दर्शन को पहुँचा। अपने राजसी अहंकार से प्रेरित होकर वह संत गरीबदास जी से बोला—"महाराज! आपको किसी भी वस्तु की आवश्यकता हो तो मुझे बताइएगा, मैं आपकी सेवा में तुरंत प्रस्तुत कर दूँगा।" संत बोले—"राजन्! तुम्हारे पास अपना क्या है, जो मुझे दोगे?" राजा बोले—"महाराज! सभी कुछ तो मेरा ही है।" यह सुनकर संत बोले—"राजन्! यह तुम्हारा भ्रम है कि यह सब तुम्हारा है। तुम्हारा शरीर तुम्हारे माता-पिता ने दिया है, धन-धान्य धरती माँ का दिया हुआ है और राजपाट भी तुम्हारा नहीं है—प्रजा के कारण ही तुम राजा बने हो। इस संसार में मात्र धर्म ही सच्ची संपत्ति है। यदि उसका पालन करते हुए तुम प्रजा की सेवा और रक्षा करोगे तो सच्चे सौभाग्य के अधिकारी बनोगे।" संत के ये वचन सुनकर राजा का अहंकार विगलित हो गया।

अंतर्मन में चलता देवासुर संग्राम

जीवन में आध्यात्मिक उत्कर्ष का अभीप्सु साधक किसी-न-किसी साधनापद्धति या धार्मिक कर्मकांड का सहारा लेकर अपनी यात्रा प्रारंभ करता है और जीवन में स्थायी सुख-शांति के साथ कुछ विशेष चमत्कारभरी उपलब्धि की आश लगाए होता है।

लेकिन साधना के बढ़ते चरणों के साथ जब आंतरिक परिष्कार की प्रक्रिया गति पकड़ती है तो अंतर में जड़ जमाए विकार असामान्य ढंग से उभरते थे, जिनके तूफानी उफान के बीच साधक विचलित हो उठता है और साथ ही बाह्य परिस्थितियाँ भी बद-से-बदतर होती प्रतीत होती हैं। ऐसे में आध्यात्मिक जीवन से जुड़े भाव कहीं हवा में तिरोहित होते दिखते हैं।

बाहर की परिस्थितियाँ तो किसी प्रकार सँभल भी जाएँ, लेकिन आंतरिक मन:स्थिति की विस्फोटक अवस्था को सँभालना स्वयं में एक बड़ा कार्य बन जाता है। इस तरह एक साधक के जीवन में वास्तविक संघर्ष चित्त की गहराइयों में, अंत:करण के केंद्र में घटित हो रहा होता है।

बाहर से हम कितना ही सफल होने का दंभ भर सकते हैं, बड़ी सफलता का अभिनय कर दुनिया की आँखों को चौंधिया सकते हैं, लेकिन अपने अंत:करण के निकटतम सत्य, प्रत्यक्ष दुर्दशा से नहीं बच सकते। अंतरात्मा हर दिन, प्रतिपल जीवन में चल रहे आंतरिक संघर्ष, युद्ध को साक्षीभाव से देख रही होती है। आखिर जन्म-जन्मांतर के कर्मों का हिसाब-किताब, इसके जखीरे का परिशोधन साधक के अंतर्मन की गहराइयों में चल रहा होता है।

इन्हीं कारणों से व्यक्ति में देवत्व-ईश्वरत्व की संभावनाओं के बावजूद पाशविक एवं आसुरी संभावनाएँ भी विद्यमान रहती हैं। जब स्वार्थ—अहं स्वयं या परिवार तक सीमित हो जाए तो पशुवत् आचरण में जीवन का दायरा सिमटा रहता है। जब मन:स्थिति और गिर जाती है, विवेक-बुद्धि विपर्यय दोष से ग्रस्त हो जाते हैं तो अवांछनीय कर्म बनते हैं तथा व्यक्ति को आसुरी एवं पैशाचिक कृत्यों में संलिप्त देखा जा सकता है। नर-पशु, नर-पिशाच जैसे संबोधन इन्हीं भाव दशाओं में इनसान के साथ जोड़े जाते हैं, जिनमें वह अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मार रहा होता है और परिवेश को भी दूषित एवं आतंकित कर रहा होता है।

ऐसे में व्यक्ति मानव जीवन के महान उद्देश्य से भटक जाता है और दुर्गति को प्राप्त होता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि ऐसे आसुरी संपदा वालों को मैं बार-बार असुर योनि में डालता हूँ। दु:ख, अशांति, क्लेश-कलह ही उनकी नियति होती है और वे नारकीय जीवन के लिए विवश होते हैं, लेकिन यदि जीवात्मा चेते, तो यही गीता पापी से भी पापी जीवात्मा के लिए भी उद्धार की बात करती है, उसके कल्याण का आश्वासन देती है।

प्रश्न एक ही है कि हम किसके पक्ष में खड़े हैं। अंदर चल रहे देवासुर संग्राम में पशुता-असुरता के पक्षधर—समर्थक हैं या देवत्व के। आंतरिक

महाभारत में हम पांडवों के पक्ष में हैं या कौरवों के। यदि देवत्व के पक्ष में हैं, तो फिर एक ही मार्ग शेष बचता है कि साहस के साथ जीवन का सामना करें।

चित्त में उभर रहे विकार, उनसे प्रेरित हो रहे दुर्भाव को अपने ही पूर्वकर्मों की फसल मानें, जिनके बीज पहले कभी जाने-अनजाने में बोए गए थे। यहाँ ईमानदारी के साथ अपनी जिम्मेदारी का बहादुरी के साथ पालन करने में ही समझदारी है। अत: अपने कर्मों का हिसाब-किताब ईमानदारी से करें। इनको पूर्णतया चुकाने की हिम्मत जुटाएँ। दैनिक आधार पर देवासुर संग्राम में पलड़ा देवत्व के पक्ष में झुकाने की जिद के साथ कटिबद्ध हो जाएँ।

यही आंतरिक देवासुर संग्राम मूलत: दुर्गासप्तशती में वर्णित है, जो हर युग में असुरता के चरम पर होने की स्थिति में शास्त्रों में, पुराणों में वर्णित आख्यान है, लेकिन यह आंतरिक देवासुर संग्राम साधक के अंत:करण में तो हर दिन, हर पल चल रहा होता है, घटित हो रहा होता है।

सोते-जागते, स्वप्न में, एकांत में, भीड़ में, हर जगह, हर स्थिति में व्यक्ति के अंदर इसकी रोमांचक, लोमहर्षक घटनाएँ घट रही होती हैं, जिनसे कोई बच नहीं सकता। प्रश्न एक ही है कि हम इसे कैसे अपने पक्ष में निर्णायक बनाएँ।

इस संदर्भ में निम्न सूत्रों पर ध्यान दिया जा सकता है—

सबसे पहले अपने कर्मों की जिम्मेदारी लें और सूची बनाएँ कि व्यक्तित्व को कौन-सा पक्ष, हमारी कौन-सी आदत जीवन में उत्पात मचाए हुए है, जीवन की सुख-शांति में खलल डाल रही है, संकट का कारण बनी हुई है और चट्टान की भाँति आत्म-उत्कर्ष के प्रयोजन को निष्फल कर रही है—इसको चिह्नित करें। संभव हो तो कागज पर लिख लें। इससे इसके निपटने में आसानी होगी।

इसको चिह्नित करने के बाद, इसके कारण जो नुकसान हो रहा है, जीवन में बरबादी का साम्राज्य पसरा है, इसका हिसाब-किताब करें, क्योंकि इसकी भरपाई की जानी है।

इसके कारण बने खाई-खंदकों का जायजा लें, इसकी जड़ तक जाएँ; क्योंकि इनकी भरपाई के बाद ही अंतर का असंतोष, खालीपन, बेचैनी शांत होने वाली है। इसके लिए आहार-विहार से लेकर अपने आचरण-व्यवहार एवं चिंतन में वांछित परिवर्तन की रूपरेखा तैयार कर लें और दृढ़ता के साथ इसे अमली जामा पहनाएँ।

अपनी यथास्थिति के अनुरूप छोटा, किंतु ठोस कदम उठाएँ और क्रमिक रूप से इसमें सुधार करते जाएँ। अंतिम लक्ष्य स्पष्ट हो तो बीच के चरण भी निर्धारित दिशा में बढ़ते रहेंगे। इसमें नियमितता बनाए रखें। धैर्य और अध्यवसाय के साथ मंजिल की ओर बढ़ें। कोई कारण नहीं कि देवासुर संग्राम का पलड़ा आपके पक्ष में न आएगा।

ध्यान एक ही बात का रखना है कि इस प्रयास को हलके में न लें, क्योंकि आंतरिक शत्रु जन्म-जन्मांतरों से हमारे अज्ञानतामूलक चिंतन व कर्मों द्वारा पुष्ट हैं, वे इतनी जल्दी समर्पण करने वाले नहीं।

एक नैष्ठिक साधक की भाँति इस महान कार्य को अंजाम देने में कटिबद्ध रहें। साधक के ईमानदार प्रयास के शिखर पर ही गुरुकृपा भी अजस्र रूपों में बरसती है, इसके प्रति आश्वस्त रहें लेकिन पहला ठोस कदम तो शिष्य-साधक को ही उठाना होता है।

अभीष्ट सफलता के लिए इसे अनुष्ठान के स्तर की तत्परता, निष्ठा एवं कठोर अनुशासन के

साथ अंजाम दें। इस संदर्भ में परमपूज्य गुरुदेव द्वारा गायत्री महाविज्ञान में वर्णित तपश्चर्याओं का अध्ययन कर अपनी स्थिति के अनुरूप अमुक तपश्चर्या का चयन व निर्धारण किया जा सकता है।

कुसंस्कारों को गलाने व रूपांतरित करने में तप की महत्ता को समझें। तपस्वी स्तर की एकांतिक निष्ठा के बल पर ही निम्न प्रकृति का रूपांतरण संभव होता है।

आधे-अधूरे प्रयास के साथ अपेक्षित सफलता की आशा नहीं की जा सकती; क्योंकि चित्तवृत्तियाँ बहुत हठीली और बलवान होती हैं, साथ ही बहुत जटिल भी। इनसे निपटना चट्टानों को चटकाने जैसे दुर्द्धर्ष पुरुषार्थ एवं धैर्य की माँग करते हैं, जब तक कि ये समतल न हो जाए।

इसके लिए नित्य रात को लेखा-जोखा करें। यदि कहीं कोई कोर-कसर रह रही हो तो, अगले दिन का कार्यक्रम और चुस्त-दुरुस्त बनाएँ। अपने कर्त्तव्यपालन के साथ स्वाध्याय-सत्संग, नियम-व्रत, जप-ध्यान का उचित पुट लगाते रहें। इसके साथ साधक का जीवन एक मिशन, एक अभियान बन जाता है।

आत्मज्ञान, आत्मबोध, आत्मसाक्षात्कार जैसे ऋषिप्रणीत ध्येय उसके जीवन को परिभाषित करने वाले लक्ष्य बन जाते हैं और वह स्वत: ही आत्मन: मोक्षार्थ, जगत् हिताय च, मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण तथा इसी धरती पर दिव्य जीवन की राह पर निरंतर आगे बढ़ चलता है। ❑

कोर्ट मार्शल के सम्मुख ताँत्या टोपे को उपस्थित करने के बाद अँगरेज न्यायाधीशों ने कहा—"यदि अपने बचाव के लिए तुम्हें कुछ कहना हो तो कह सकते हो।"

"मैंने ब्रिटिश शासन से टक्कर ली है।"—ताँत्या ने स्वाभिमानपूर्वक कहा—"मैं जानता हूँ कि इसके बदले मुझे मृत्युदंड प्राप्त होगा। मैं केवल ईश्वरीय न्याय में विश्वास करता हूँ, इसलिए अपने बचाव में कुछ नहीं कहना चाहता। जो मुझे कहना होगा, वो इस अदालत में नहीं, परमात्मा की अदालत में कहूँगा।"

ताँत्या को फाँसी दिए जाने का निर्णय सुनाया गया। फाँसी दिए जाने से पहले जब उनके हाथ-पैरों को बाँधा जाने लगा तो उन्होंने कहा—"तुम मेरे हाथ-पाँव बाँधने का कष्ट क्यों करते हो? लाओ फाँसी का फंदा, मैं स्वयं ही अपने हाथों से डाल लेता हूँ।" और वे हँसते-हँसते फाँसी पर झूल गए।

महापुरुषों की यही पहचान होती है कि वे कर्त्तव्यपालन करते हुए यदि मृत्यु को भी प्राप्त होते हैं तो उसे वे सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं।

गीता में ध्यानयोग के साधना सूत्र

ध्यान वास्तव में करना नहीं पड़ता, हो जाता है; क्योंकि यह आत्मा का मूल स्वभाव है, लेकिन अपनी मूल अवस्था में स्थित न होने के कारण, अज्ञानजनित अभ्यास के चलते हम चित्त की वृत्तियों के अनुरूप विभिन्न मनोदशाओं से गुजरते रहते हैं। चित्त की गहराइयों में दबे पड़े कर्म-संस्कारों के कारण नाना प्रकार के कर्मों या विचार भावों की लहरें जीवन के पटल पर उठती हैं, तो चित्त की तली पर कुछ दिखाई नहीं देता, जैसे कि किसी गंदे तालाब में तल पर हलचल होने पर नीचे कुछ स्पष्ट नहीं दिखाई पड़ता।

झील की लहरें, एक तरह से चित्तवृत्तियाँ हैं। वास्तविक स्व, आत्मतत्त्व झील का तल। चित्त में उठ रही लहरों के कारण आत्मा की तली को नहीं देख पाते। चित्त के कर्म-संस्कार एवं मन की विषय भोग की लालसा—ये सब कारक हैं, जिनके कारण चित्त-चेतना की सही झलक नहीं मिल पाती। ध्यान योग में इंद्रियों को विषय-भोगों से हटाकर, मन को अंतर्मुखी करते हुए, चित्तवृत्तियों को शांत किया जाता है। प्रत्याहार और धारणा के सोपानों को पार करते हुए साधक ध्यान की गहराइयों में प्रविष्ट होता है और चेतना के स्रोत से जुड़ता हुआ, समाधि की परमानंद अवस्था को प्राप्त होता है।

ध्यान एक स्वयंसिद्ध प्रक्रिया होने के बावजूद प्रारंभिक अवस्था में इसका अभ्यास करना पड़ता है; क्योंकि शरीर, इंद्रियों व मन के दीर्घकालिक अभ्यास को नई दिशा में प्रवृत्त करना होता है और अपने अस्तित्व के मूलस्रोत परमात्मतत्त्व से जुड़ने का सचेतन प्रयास करना होता है। इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता (6/10) में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि साधक एकांत में रहे और संसार सुख की झूठी आशा तथा लौकिक संग्रह की कामना का त्याग कर शरीर तथा मन को नियंत्रित करते हुए परमात्मचिंतन में लीन रहे।

व्यक्ति सामान्यतया जीवन में सुख व आनंद की खोज में बाहर ही भटकता रहता है; जबकि उसका मूलस्रोत उसके अंदर ईश्वरीय तत्त्व के रूप में विद्यमान है। ध्यानयोग इसी अवस्था में साधक को प्रतिष्ठित करने का अभ्यास है। इस अवस्था तक पहुँचने के लिए श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 6 में ध्यानयोग के विविध चरणों का बहुत सुंदर एवं सांगोपांग वर्णन किया गया है।

इसके लिए भगवान श्रीकृष्ण शुद्ध व स्वच्छ स्थान पर आसन का मार्गदर्शन करते हैं, जहाँ क्रमशः कुशा, मृगछाला और वस्त्र का आसन बिछा हो। आसन बहुत ऊँचा या नीचा न हो।

इस तरह अपने आसन पर दृढ़तापूर्वक स्थिर होकर बैठें और चित्त और इंद्रियों की क्रियाओं को वश में रखते हुए मन को एक बिंदु पर स्थिर करते हुए, अंतःकरण की शुद्धि का योगाभ्यास करें। (गीता—6/11, 6/12) काया व दृष्टि को किस तरह से ध्यान के लिए तैयार करना है, यह भी श्रीमद्भगवद्गीता में स्पष्ट रूप से वर्णित है। शरीर, गरदन व सिर को सीधा तथा अचल रखते हुए स्थिर होकर, अपनी दृष्टि को बिना इधर-उधर हिलाए नासिका के अग्रभाग पर स्थिर करें। (गीता-6/13)

आगे भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि ध्यान-साधना के लिए साधक शांत, भयरहित होकर ब्रह्मचर्य व्रत में सजग स्थिर होकर मन से मेरा चिंतन करे और मुझे ही अपना परम लक्ष्य बनाए। (गीता-6/14) इस तरह मन को संयमित रखने वाला योगी, मन को निरंतर मुझ परमेश्वर में लगाता परम शांति और आनंद को प्राप्त होता है। (गीता-6/15)

ध्यानयोग के लिए श्रीमद्भगवद्गीता अतिवादिता को छोड़कर मध्यम मार्ग का प्रतिपादन करती है। यह योग न बहुत खाने वाले का, न बिलकुल न खाने वाले अर्थात भूखे रहने वाले का, न बहुत सोने वाले का और न सदा जागने वाले का ही सिद्ध होता है। (गीता-6/16) दुःखों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार-विहार करने वाले का, कर्मों को संतुलित रखने वाले का और यथायोग्य सोने तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है। (गीता-6/17)

इस तरह वायुरहित स्थान पर अप्रकंपित दीपक की भाँति संयमित मन वाला योगी आत्मचिंतन में स्थिर रहता है। इस तरह शुद्ध मन आत्मतत्त्व को देख सकता है और अकारण आनंद में निमग्न रहता है। परमानंद की इस अवस्था में संसार में और कुछ पाने की इच्छा नहीं रहती। इस अवस्था में योगी संसार की बड़ी-से-बड़ी आपदा या दुःख से विचलित नहीं होता। (गीता-6/19-22)

ध्यान-साधना में धैर्य और उत्साह की आवश्यकता पर बल देते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो दुःखस्वरूप संसार के संयोग को जड़-मूल से नष्ट करने वाले योग को जानना चाहता है, उसे बिना निराश-उदास हुए, धैर्य तथा उत्साह के साथ दृढ़तापूर्वक इसका अभ्यास करना चाहिए। (गीता-6/23)

क्रमिक रूप से, धीरे-धीरे इस मार्ग पर बढ़ने का मार्गदर्शन भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को करते हैं—नश्वर चिंतन से उठने वाली सभी इच्छाओं व कामनाओं को पूर्णरूप से त्यागकर और मन के द्वारा इंद्रियों पर सभी ओर से अंकुश लगाना चाहिए। फिर शनैः-शनैः—क्रम-क्रम से अभ्यास करता हुआ, मन परम तत्त्व में स्थिर होगा और फिर परमात्मा के अतिरिक्त कुछ चिंतन न करेगा। (गीता-6/24-25) इसके लिए भगवान श्रीकृष्ण बारंबार अभ्यास पर बल देते हैं।

इसके परिणामस्वरूप व्यक्ति में क्रमिक रूप से समदृष्टि का विकास होता है, जीवन के द्वंद्वों के बीच सम अवस्था प्राप्त होती है। आत्मचेतना को परमात्मा से एकीकृत करने वाला सच्चा योगी सभी जीवों में और प्रत्येक वस्तु में समान रूप से परमात्मा के ही दर्शन करता है। (गीता-6/29-30)

भगवान श्रीकृष्ण के शब्दों में, मुझमें एकनिष्ठ योगी सभी प्राणियों में मुझे देखकर मेरी ही आराधना करता है और सभी प्रकार के कर्म करता हुआ केवल मुझमें ही स्थित हो जाता है। (गीता-6/31) इस अवस्था में ध्यान करना नहीं पड़ता, हो जाता है और योगी अपने आत्मस्वरूप में प्रतिष्ठित होकर परमात्मा में रमण करता हुआ समाधि की परमावस्था को प्राप्त होता है। ❑

अलसस्य कुतो विद्या अविद्यस्य कुतो धनम्।
अधनस्य कुतो मित्रम् अमित्रस्य कुतः सुखम्॥

अर्थात आलसी मनुष्य को विद्या नहीं मिलती और जो विद्या से हीन है, उसे धन नहीं मिलता। निर्धन का कोई मित्र नहीं होता और जिसके मित्र नहीं हैं, वह सुखी नहीं होता।

जो जीवन सुधारे, वही है अध्यात्म

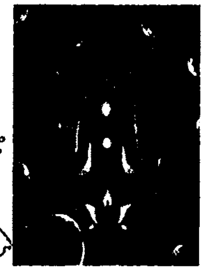

बाहर हम जो कुछ भी करें, वह अपने आंतरिक जीवन को सरल बनाने की दृष्टि से ही होना चाहिए। कम कामना, कम संसाधनों के साथ चलने को इसलिए कहा गया है; क्योंकि इनमें आत्मिक-प्रगति की अधिक सुविधा रहती है। इसलिए कहते हैं कि बोझा इतना न उठाओ कि आसानी से छोड़ न सको।

कहने का तात्पर्य है कि जिस जीवन को हम जी रहे हैं, वह दीर्घकाल में एक सुव्यवस्थित रीति-नीति से बीतना चाहिए। इसका उपाय है आवश्यक को स्वीकारना तथा जो अनावश्यक लगे, उसे त्यागते जाना।

जीवन का यही सिद्धांत है कि हम अमर होने के लिए पैदा हुए हैं, इसलिए पहले देख लीजिए कि जिन चीजों से संबंध जोड़ रखा है वे अमरता दिलाने वाली हैं भी कि नहीं। जिसका एकत्व-बोध जाग्रत हो चुका हो, जिसने अपने आप को भीतर विराजित परमात्मा को सौंप दिया हो, वह व्यक्ति कभी हीन-चरित्र एवं पाप-कुंठित नहीं हो सकता।

उसे परिस्थितियाँ विवशतावश डिगा नहीं सकतीं तथा उसका जीवन एक अद्भुत चमत्कार का पर्याय हो जाता है। इस अवस्था से कोई भी कार्य किया जाए वह सच्चा एवं दीर्घकाल में उन्नति देने वाला होता है। एक सुव्यवस्थित जीवनक्रम के लिए आवश्यक है कि कार्य ऐसे अपनाए जाएँ जो आंतरिक जीवन में सफलता एवं बाह्य जीवन में उन्नति का पथ प्रशस्त करें।

इसके लिए चाहिए होता है संकल्प तथा उत्साह-उमंग से भरा दृष्टिकोण तथा साथ ही कुछ करने की उत्कट भावना। शेष अन्य कार्य तो अंतरात्मा की दिव्य आवाज स्वयं करा लेगी, जिसके आवाहन पर मानव-प्राणी सक्रिय हैं। उसे कुछ चाहिए तो मात्र एक भीतरी अवलंबन, जिसके द्वारा वह संसार में अधिकांश कार्य कर सके।

अंतरात्मा जो सोचती है एवं करने को तत्पर होती है वह कभी व्यर्थ या मिथ्या नहीं होता। उसे ही दिव्यदर्शियों ने मेधा कहा है, यानी ऐसी कार्य-प्रणाली जो विश्वासपूर्वक हमें संसार के खाई-खंदक से पार ले जाती रहे तथा जिसके अवलंबन द्वारा हम सभी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करें।

आत्मा जिस मार्ग से प्राप्त होती है, उसे ही कहते हैं कर्मयोग तथा इस नाते हमारा यह कर्त्तव्य हो जाता है कि जीवन में उन्हीं बातों को पकड़ें, जो हमें आत्मा के निकट ले जाती हों तथा संसार से हमारा संबंध लेशमात्र भी आसक्ति या अपूर्णता का न रह जाए।

इसी दृष्टिकोण के साथ यदि देखा जाए तो सारा जगत् एक दिव्यभाव से ओत-प्रोत दिखाई पड़ता है तथा मार्ग के कंटकाकीर्ण उतार-चढ़ाव हमें अधिक परिपक्व बनाने के लिए ही हैं। यही दिव्य-रूपांतरण एवं दिव्य-जीवनप्रणाली का अभिनव द्योतक है तथा इसके द्वारा जीवन के

नवनिर्माण में आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त की जा सकती है।

इस दृष्टि से सोचा जाए तो कार्य वही किए जाएँ, जो आंतरिक जीवन को सुदृढ़ और मजबूत बनाते हों। जिनसे आत्मा विकास को प्राप्त करती हो तथा जीवन निखरता हो। उसे ही संवेदना का प्रकाश तथा आदि-अनंत परमात्मा से जुड़ने की विधा कहेंगे तथा इस मार्ग से निश्चित ही सांसारिक-जीवन में सफलता तथा आंतरिक-प्रगति के परिक्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त की जा सकती है।

यही महानता का राजमार्ग है एवं इस पर चल कर जीवन धन्य हो जाता है। जिस प्रक्रिया को अपनाकर जीवन सुधरता हो, वही अध्यात्म है तथा इस दृष्टि से जीवन में करने योग्य वही है, जो आत्मा को जगाए, दूसरों के कल्याण में नियोजित हो तथा स्वयं के परिष्कार से संबंधित। ❑

महाभारत में कथा आती है कि जब पांडवों का वनवास काल चल रहा था और वे द्वैत वन में निवास कर रहे थे, तब इस बात की सूचना दुर्योधन को मिली। यह समाचार मिलने पर दुर्योधन ने अपने दल-बल के साथ वहाँ जाने का निर्णय किया। उसका उद्देश्य मात्र पांडवों को नीचा दिखाना और अपने राजसी वैभव का दिखावा करना था, परंतु विधि का विधान कुछ ऐसा था कि दुर्योधन के वहाँ पहुँचने से पहले ही उसका सामना गंधर्वराज चित्रसेन के समूह से हो गया।

चित्रसेन अत्यंत पराक्रमी एवं गंधर्वश्रेष्ठ राजकुमार था। दुर्योधन तो स्वभाववश वैमनस्य रखने वाला था ही, सो उसने अकारण ही अपनी सेना को चित्रसेन पर हमला करने को बोल दिया। दुर्योधन को अंदेशा था कि वह आसानी से चित्रसेन को हरा लेगा, पर होनी को कुछ और ही मंजूर था। चित्रसेन की सेना ने दुर्योधन को न केवल हरा दिया, वरन उसको अपने कब्जे में ले लिया।

दुर्योधन के मंत्री व बचे हुए सैनिक पांडवों के पास सहायता माँगने को पहुँचे। युधिष्ठिर ने उनको अभयदान दिया, व युद्ध करके दुर्योधन को चित्रसेन के पास से सकुशल छुड़वा दिया। भीम दुर्योधन की सहायता करने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने भ्राता युधिष्ठिर से प्रश्न किया—दुर्योधन तो अकारण ही हमसे वैर रखता है, फिर हमें उसकी सहायता करने से क्या लाभ? उसको उसके कर्मों का फल मिलने दिया होता।

भीम का वचन सुनकर युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—

परस्परं विवादे तु वयं पञ्च शतं तु ते।
अन्यैः सह विवादे तु वयं पञ्चशतोत्तरण॥

अर्थात हम पाँचों भाइयों का भले ही अपने सौ भाइयों से विवाद हो जाए, परंतु यह वैमनस्य परिवार के भीतर ही रहना चाहिए। किसी अन्य के साथ संघर्ष होने पर हम सबका साथ-साथ रहना ही श्रेयस्कर है।

पक्षियों के घरौंदों का रोचक संसार

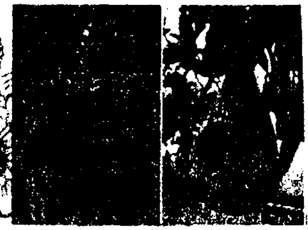

रोटी, कपड़ा और मकान—ये तीन इस धरती पर हर प्राणी की आधारभूत आवश्यकताएँ हैं। मनुष्य तो अपनी बुद्धि-चातुर्य एवं वरिष्ठता के आधार पर इन तीनों के विशेष सरंजाम जुटाता रहता है। मकान की बात करें तो इनसान अपने बौद्धिक कौशल के आधार पर एक-से-एक बेमिसाल आशियाने बनाकर बैठा है। हालाँकि समय की कसौटी पर सभी खंडहर ही साबित होते हैं और पर्यावरण की कसौटी पर अधिकांश खरे नहीं उतरते।

दूसरे प्राणियों में पक्षी भी अपनी प्राकृतिक बुद्धि के आधार पर अपने घर-घरौंदों की व्यवस्था करते हैं। इनमें कइयों में ईश्वरप्रदत्त जन्मजात कौशल इतना अद्भुत होता है कि उनकी रचनाएँ सुविधा व सुरक्षा की दृष्टि से आश्चर्यचकित करती हैं और पर्यावरण की दृष्टि से भी प्रकृति के बहुत समीप होती हैं।

ये तिनका-तिनका जोड़कर अपना घरौंदा बनाते हैं। हजार बार उड़कर तिनके बटोरते हैं और अथक श्रम के साथ इनके घरौंदे बनते हैं। हालाँकि इस संदर्भ में विचित्रता भी रहती है। इनमें कुछ कुशल खिलाड़ी साबित होते हैं, तो कुछ निपट अनाड़ी। प्रस्तुत है पक्षियों के घोंसलों का रोचक संसार।

पक्षियों के घोंसलों का अपना संसार है, जिसमें मोटेतौर पर छोटे-बड़े, गुहा आकार के, लटकते, तैरते, मिट्टी से बने तथा जमीं पर खुदे घोंसले देखे जा सकते हैं। इनमें सबसे छोटा और विशिष्ट घोंसला हमिंग बर्ड का माना जाता है, जो रेशम, मकड़ी के जाले, छोटे पत्ते या स्वयं के पंख के अवशेष से बना होता है। यह लचीला होता है, जिससे जब चूजे अंडे से बाहर निकलकर बड़े होते हैं तो घोंसला चुस्त और आरामदायक रहता है।

स्विफ्ट लेड बर्ड, निकोबार द्वीप समूह की पहाड़ियों में रहने वाला एक पक्षी है, जिसका घोंसला उसकी लार से बनता है। यह इकलौता घोंसला है, जिसे इनसान खा सकता है। अत:इसे बेहद कीमती माना जाता है। अपनी इस विशेषता के कारण इस पक्षी का अस्तित्व खतरे में है; क्योंकि इनसान इसके घोंसले के शिकार की फिराक में रहता है।

चील, कौए, बाज आदि के घोंसले बड़े आकार के होते हैं। चील का घोंसला सबसे बड़ा तथा भारी माना जाता है, सामान्यतय: वह उसी घोंसले का पुन: उपयोग करते हैं तथा यह हर वर्ष इसे बढ़ा करते रहते हैं। वहीं बाज अपना घोंसला बहुत ऊँची चट्टानों या ऊँचे-लंबे वृक्षों पर ही बनाते हैं, जो देखने में बहुत सुंदर व कलात्मक तो नहीं होते, लेकिन सूखी लकड़ियों व झाड़ियों के बने इनके घोंसले मजबूत होते हैं।

इनमें प्राय: नुकीली लकड़ियाँ भी होती हैं, जिससे इनके घोंसलों पर शत्रु झपट्टा मारने का साहस नहीं कर सके। साथ ही यह भी एक रोचक तथ्य है कि जिस वृक्ष पर बाज का घोंसला होता है, वहाँ दूसरे पक्षियों का घोंसला नहीं होता। इसका मुख्य कारण संभवत: यह रहता हो कि दूसरे पक्षी बाज से डरते हैं।

चतुर पक्षी कौआ वृक्ष की सबसे ऊँची डाल पर घोंसला बनाता है, लेकिन घोंसले के मामले में कौआ एक अनाड़ी पक्षी साबित होता है; क्योंकि यह घास-फूस, तिनके, पत्ते आदि को बटोरकर बेतरतीब ढंग से घोंसला बनाता है। हालाँकि आकार में यह बड़ा होता है, लेकिन आकर्षक नहीं। कई बार कौआ मैना के घोंसले में भी अंडे दे देता है। अंडे से निकलने के बाद चूजे फुर्र हो जाते हैं।

अपने सुंदर और आकर्षक पंख तथा मनभावन नृत्य के कारण सबका ध्यान आकर्षित करने वाला पक्षी मोर भी अपने घोंसले के बारे में अधिक सचेष्ट नहीं होता। इसका घोंसला प्राय: झाड़ियों में घास-फूस का बना होता है, जहाँ मोरनी एक बार में तीन से पाँच अंडे देती है।

मुख्य रूप में यह नदी, तालाब या झरनों के समीप घोंसला बनाते हैं। कबूतर को भी घोंसला बनाने के मामले में अनाड़ी पक्षी माना जाता है। इसका घोंसला बेतरतीब बना होता है, जिसमें अंडे तथा चूजे कई बार नीचे गिरकर दुर्घटनाग्रस्त तक होते हैं।

इस मामले में बया पक्षी का घोंसला सबसे सुरक्षित, सुंदर तथा आकर्षक होता है। लगता है ईश्वर ने घर-निर्माण की सारी समझ उसे दे रखी हो। यहाँ घोंसला बनाने का काम नर पक्षी का होता है, जो अपने कौशल से मादा को आकर्षित करता है! जब मादा संतुष्ट हो जाती है तभी इसमें प्रवेश करती है।

फिर दोनों एक साथ मिलकर घोंसला बनाते हैं। बया घास के तिनके, लकड़ी या पत्तियों की तीलियों से बुनकर अपना घोंसला बनाता है। हालाँकि इसका घोंसला वृक्ष की टहनियों में लटकता हुआ रहता है, लेकिन बया पक्षी का घोंसला इतनी कुशलता से बना हुआ होता है कि इसमें पानी बिलकुल नहीं गिरता।

बया काँटेदार या ताड़ के वृक्षों में अपना घोंसला बनाना पसंद करता है, जिससे दूसरे पक्षियों से अंडे व बच्चों की सुरक्षा हो सके। इसके घोंसले में कई तल हो सकते हैं, जो परिवार में सदस्यों की संख्या पर निर्भर करते हैं। इसको अपने घोंसले को जुगनुओं तक से रोशन करते देखा जाता है।

दक्षिण अफ्रीका, नामीबिया, बोत्सवाना आदि देशों में पाए जाने वाले बया पक्षी की कुछ प्रजातियों के घोंसले दिखने में जटिल होते हैं। ये कॉलोनी बनाकर रहते हैं और इनकी एक कॉलोनी में लगभग आठ सौ से हजार तक पक्षी होते हैं और इनके घोंसले एकदूसरे से जुड़े होते हैं।

गुहाकार घोंसला पेड़ या नरम गीली मिट्टी में बनता है। तोता, उल्लू, मैना, कठफोबड़ा, रामचिरेइया आदि के घोंसले इस श्रेणी में आते हैं। नदी, तालाब जैसे जलस्रोत्रों के पास देखे जाने वाला ब्लू किंगफिशर पक्षी आस-पास की नरम भूमि को खोदकर सुरंगनुमा घोंसला बनाता है, जो प्रारंभ में 50 सेमी लंबा और आगे चलकर चौड़ा होता है, जिसमें अंडों को सुरक्षित रखा जा सके।

इसमें एक बार में 5-7 तक अंडे हो सकते हैं। कुछ जल पक्षी, जिनमें कई बतखें भी शामिल हैं, पानी से दूर ऊँचे घास के मैदानों में घोंसला बनाती हैं। जबकि गोताखोर लून, ग्रीब्स जैसे जल पक्षी सीधे पानी के ऊपर घोंसला बनाते हैं। अंडे डूब न जाएँ, इसलिए ये जलीय वनस्पति तथा कीचड़ से तैरते हुए प्लेटफॉर्म बनाते हैं। अपने घोंसलों को छिपाने तथा दूर जाने से रोकने के लिए ये उभरी वनस्पतियों में लंगर डालते हैं।

अबाबिल जैसे पक्षी मिट्टी के घोंसले बनाते हैं। ये गीली मिट्टी के साथ छोटी झाड़ी तथा पत्तों

को मिलाकर हजारों छर्रों का उपयोग करके कप के आकार के घोंसले बनाते हैं और ये इतने मजबूत होते हैं कि वर्षा में भी नहीं गलते और तूफानों में भी सुरक्षित रहते हैं।

मुरगी, शुतरमुर्ग, एमू जैसे उड़ने में असक्षम पक्षियों के घोंसले धरती पर होते हैं। जमीनी पत्ते व झाड़ियों को मिलाकर ये अपना घरौंदा तैयार करते हैं। शुतुरमुर्ग अपना घर रेत पर ही बनाता है। सबसे बड़े पक्षियों में एक शुतुरमुर्ग बड़ी बहादुरी के साथ अपने अंडों की रक्षा करता है। वस्तुत: जमीन पर घोंसले के कारण इनके अंडों व बच्चों को कुत्ते, बिल्ली, साँप, छिपकली, शिकारी आदि से पर्याप्त खतरा भी रहता है।

इनके अतिरिक्त तटीय क्षेत्रों में पक्षी खतरनाक चट्टानीय घोंसले भी बनाते हैं, जो किनारे पर अतिरिक्त नुकीले होते हैं, जिससे अंडे व चूजे किनारे पर नीचे न लुढ़कने पाएँ। किनारे पर बने ये घोंसले शिकारियों से भी सुरक्षित रहते हैं।

एक पक्षी को घोंसला बनाने में कुछ दिनों से लेकर तीन या अधिक सप्ताह का समय लग सकता है। पक्षी घोंसला बनाना कैसे जानते हैं, यह एक शोध का विषय है, लेकिन प्रतीत होता है कि उनमें यह क्षमता जन्मजात विद्यमान रहती है। कुछ लोगों का मानना है कि ये दूसरों के खाली घोंसलों का अध्ययन करते हैं, जिससे उन्हें समझ मिलती है कि किस तरह से अपना घोंसला तैयार करना है।

जो भी हो पक्षी अपने लिए अंडे व बच्चों की सुरक्षा की दृष्टि से घोंसला बनाते हैं, जिनमें कुछ अनाड़ी स्तर के होते हैं तो कुछ इतने बेहतरीन कि उनकी बुद्धिमत्ता पर आश्चर्य होता है।

इनसान के भवन निर्माण जहाँ समय की कसौटी पर प्राय: खरे नहीं उतरते और अंतत: धराशायी होकर खंडहर में बदल जाते हैं तथा पर्यावरण की दृष्टि से भी प्रकृति के अनुकूल नहीं रहते।

उनकी तुलना में पशु-पक्षी प्रकृति के साथ रहते हुए, एक समावेशी जीवन जीते हैं तथा सही माने में कलाकार की भाँति अपने प्राकृतिक घरौंदों के साथ सृष्टि के कलात्मक सौंदर्य में भी वृद्धि कर रहे होते हैं। मनुष्य इनसे यह सीख लेकर प्रकृति से तालमेल बिठाती आवास-निर्माण की विधा को अपना सकता है। ❑

ईरान के राजा शाह अब्बास को किसी कार्यक्रम में वृक्षारोपण के लिए बुलाया गया था। वृक्षारोपण के समय उस उद्यान का माली वहाँ उपस्थित नहीं था, अत: शाह ने अपने हाथों से पौध रोप दी। जब माली लौटा तो उसने पौधों की बेतरतीब कतारें देखीं। उसने उनको निकालकर दोबारा से रोपना प्रारंभ कर दिया।

राजा तक यह बात पहुँची। कुछ चुगलखोरों ने उसको दरबार में बुलवाया, ताकि उसे राजदंड मिल सके। उसे कहा गया कि शाह ने अच्छा मुहूर्त देखकर पौधे रोपे थे और तुमने पौधे निकालकर मुहूर्त और शाह, दोनों का अपमान किया है। माली सर झुकाए खड़ा था। पर शाह अब्बास ने उसकी तारीफ करते हुए कहा—''मेहनत करने वालों के लिए हर मुहूर्त शुभ होता है। जो माली राजदंड की परवाह करे बगैर बाग का ध्यान दिल लगाकर करता है; उसे सजा नहीं, पुरस्कार मिलना चाहिए।'' माली को ससम्मान विदा किया गया।

गायत्री मंत्र : हमारी आत्मा का मंत्र

इस मंत्र को कितने ही लोगों ने उच्चारित किया, कितनी ही बार इसका उल्लेख वेद-पुराणों में, शास्त्रों के गूढ़ार्थ में तथा कई महापुरुषों के जीवनचरित्र में आया। गायत्री क्या है? क्या मंत्र, देवता या भारतीय संस्कृति का कोई अन्य प्रतीक। गायत्री वह शक्ति है, जो आदमी की आत्मा को जगाए, उसे उत्कृष्ट जीवन-पथ की दिशा में अग्रसर करे।

गायत्री से प्रेरित होकर ही किसी शुभ कार्य में प्राण भरा जाता है। जीवन की सफलता हो या उत्कृष्ट प्रयोजनों के निमित्त हमारा साहस, गायत्री हर मार्ग पर हमारे साथ खड़ी होती दिखाई देती है। गायत्री हमारी आत्मा है, उसके पुण्योत्सर्ग का मार्ग हमें उसी शक्ति से प्राप्त हो सकता है, जिसे गायत्री मंत्र के उच्चारण क्रम में हम आवाहित करते हैं। गायत्री मंत्र की प्रेरणा से जीवन कितना सुंदर और वैभवशाली हो जाता है, इसे कोई यथार्थ पथिक ही समझ सकता है।

गायत्री माँ है, जो अपने पुत्रों को कभी असहाय तथा पिछड़ी हुई स्थिति में नहीं रहने देती। इसकी शक्ति से जीवन हर प्रकार से समुन्नत हो जाता है, ऐसा ज्ञानियों का मत है। जिसने भी इसे जपा, अपनाया एवं प्रयोग में लाया, उसका जीवन फिर कभी किसी अंधकार के गर्त में नहीं रह गया। हमें यह विश्वास रखना चाहिए कि मंत्र में जो शक्ति होती है, वह उन संस्कारों से प्रेरित है, जिसे जपकर्त्ता ऋषि ने प्रथम बार उच्चारित कर उसे दिव्य प्रयोग प्रदान किया था।

गायत्री की शक्ति-सामर्थ्य से हम सभी परिचित हैं, परंतु जो सच में इसे मानते हैं, जिनके जीवन में वास्तव में इसका प्रभाव पड़ा है, वह व्यक्ति यह भी स्वीकारेंगे कि गायत्री मंत्र अपने आप में पर्याप्त नहीं। इसे आचरण की शुद्धता तथा विवेक की परिपूर्णता भी चाहिए होती है, गायत्री समग्र-व्यक्तित्व का परिपोषण करती है, उसे महान एवं दैवी चरित्र प्रदान करती है।

गायत्री की प्रेरणा से सभी सुधी जन हर्षमग्न होते हैं तथा उनके जीवन से सारा अंधकार चला जाता है। यह उस मंत्र का चमत्कार है, जिसे जपकर्त्ता ऋषि ने प्रथम बार तब देखा, जब चेतना का पूर्ण विगलन किसी दिव्य भाव को, किसी आदर्श प्रेरणा को हो गया था।

मंत्रद्रष्टा ऋषि अपने संस्कारों की दैवी-पूँजी से सभी प्रकार के रोग-कष्ट को दूर करने वाले चिर-विधान का आविष्कार करते हैं तथा उससे उपयुक्त मनोभूमि के निर्माण में सहायक ओज एवं वर्चस्व की प्राप्ति करते हैं। गायत्री का साक्षात्कार कर ऋषि विश्वामित्र अपने समूचे परिक्षेत्र में, वृक्ष-उपवन में तथा प्रत्येक विषय-वस्तु में उस आदि-प्रकाश की स्वीकृति पाते हैं, जिसे यह मंत्र अपने में समाये है।

गायत्री एक दिव्यशक्ति का नाम है, जो जिसके पास है, वह देवता कहलाता है; महामानव एवं ऋषि बन जाता है। इस मंत्र में छिपी ताकत को आप तभी पहचान पाएँगे, जब इसे जीवन-निर्माण में प्रयुक्त करें, इससे दैवी-मनोभूमि बना अपने चरित्र की सभी दुर्बलताओं को मिटाएँगे तथा भगवान की अमृत-धरोहर गायत्री को आत्मसात् करेंगे।

जिस देवता को यह मंत्र समर्पित है, वे सूर्य हैं यानी संपूर्ण जगत् के नियंता, उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त कर गायत्री के बीजाक्षर उत्कीलित किए गए हैं।

इससे सर्वोत्तम विधि उपासना की नहीं हो सकती; क्योंकि यह मंत्र अपने आप में इतना शक्तिशाली है कि इसके प्रभाव से जीवन पूर्ण परिष्कार एवं दैवी-चरित्र को प्राप्त करता है। जिन सत्प्रेरणाओं को यह मंत्र अपने में लिए हुए है, वे इतनी विशाल हैं कि यदि उन्हें सही प्रकार आत्मसात् किया जा सके तो जीवन में भगवत्ता एवं अनुकंपा दोनों परिलक्षित होने लगते हैं।

गायत्री से प्रिय सखा मानव-अंतरात्मा का कोई नहीं हो सकता है तथा जिस शक्ति को इस मंत्र में समाहित किया गया है, वह इतनी विशाल है कि यदि उसका थोड़ा भी अंश मानव अपने सत्प्रयोग में ले तो जीवन महान वैभवशाली कहलाता है। उपासना, साधना एवं आराधना की त्रिवेणी से इस मंत्र की सत्ता को चरितार्थ किया जाता है तथा जिस किसी के पास गायत्री की शक्ति है, वह फिर दोबारा कभी पतन एवं पराभव के गर्त में नहीं गिर सकता।

गायत्री मंत्र तब सफल होता है, जब पात्रता, पवित्रता एवं श्रेष्ठता जीवन के अनुकूल सिद्धांत बन जाएँ, जब जीवन उत्कर्ष का प्रार्थी तथा महानता का अंशधर कहलाए। इस मंत्र की प्रेरणा से महामानवों ने अपने जीवन-चरित्र रचे हैं, तथा जिस भी प्रकार मनुष्य संतोषपूर्वक इसकी शक्ति-संपदा को अपने प्रयोग में लाता है, वह पथ महान एवं अनुकरणीय कहलाता है।

जिस जीवन में गायत्री का प्रभाव न हो, वह मूल्यहीन एवं जर्जर हो जाता है; गायत्री ऐसी महाशक्ति है, जो एक बार मनुष्य में जाग्रत हो जाए तो उसका कायाकल्प करके रहती है। इसकी शक्ति-सामर्थ्य से वे ही परिचित होते हैं, जो अपने चरित्र में बलिष्ठता, आत्मा में शुद्धता तथा प्राणों में समर्पण-निष्ठा के भाव को उजागर करते हैं तथा जीवन को धन्य एवं निहाल बना लेते हैं। जो इस मंत्र का हो सका, वह फिर कभी दुर्बल नहीं रह जाता और जिसे इसके अमूर्त-प्रकाश का दिग्दर्शन हो जाता है, उसका जीवन फिर सँवरे बिना नहीं रहता।

इसलिए प्रत्येक जागरूक एवं संवेदनशील व्यक्ति को गायत्री के तत्त्व-चिंतन तथा उत्कृष्ट-क्रियाव्यवहार से परिचित होना चाहिए तथा इसके द्वारा हर प्रकार की विषमता पर विजय प्राप्त कर, जीवन के उद्देश्य को सफल एवं सार्थक करना चाहिए।

गायत्री महामानवों की जननी है, अवतारों का एकमात्र संबल तथा मनुष्यता के लिए एक अद्भुत वरदान है। इसके प्रचंड प्रताप से सारी मनुष्यता लाभान्वित हो, ऐसी हम आशा-अपेक्षा करते हैं तथा इसे नवयुग के लिए एक अबूझ अस्त्र के रूप में प्रयुक्त करना अभी बाकी है।

कृतं फलति सर्वत्र, नाकृतं भुज्यते क्वचित्।।

अर्थात अपना किया हुआ कर्म ही सर्वत्र फल देता है। बिना किए हुए कर्म का फल कभी किसी ने नहीं भोगा।

जिस सिद्धांत के आधार पर गायत्री मंत्र अपना कार्य करता है, वह आत्मार्पण का तथा जीवन को सदुद्देश्य की प्राप्ति में लगाने वाला है, इसलिए प्रत्येक जिम्मेदार व्यक्ति गायत्री का यह व्रत धारण करे कि हम गायत्री से सुख एवं ऐश्वर्य ही नहीं आत्मिक-संपदा एवं पूर्णानंद की प्राप्ति की भी अभिलाषा करते हैं, तथा इसे जीवन को भव्य-वैभवशाली बनाने में प्राणपण से जुट पड़ते हैं।

यही गायत्री का अद्भुत चिंतन एवं उससे जीवन में परिष्कृति का मुख्य द्वार है तथा इस मार्ग पर चलकर जीवन पूर्णता-प्राप्ति की दिशा में बढ़ चलता है। यही गायत्री-साधना की अद्भुत सामर्थ्य है। ❑

पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा-21

सिद्धियों और विभूतियों का राजमार्ग—आत्मशोधन

जादू की तरह तुर्त-फुर्त चमत्कार दिखा सकें ऐसे कर्मकांडों की तलाश में भटकने वाले लोगों को गुरुदेव यह बताना चाहते थे कि सिद्धियों और विभूतियों की गरिमा और महिमा का राजमार्ग आत्मशोधन और आत्मनिर्माण की चाल से चले बिना पूरा नहीं हो सकता। कोई सीधी पगडंडी ऐसी नहीं है जो देवता, मंत्र, गुरु या संप्रदाय का पल्ला पकड़ने से सहज ही परम लक्ष्य तक पहुँचा सके।

अध्यात्म एक क्रमबद्ध विज्ञान है, जिसका सहारा लेकर कोई भी व्यक्ति उसी तरह लाभान्वित हो सकता है जिस तरह कि बिजली, भाप, आग आदि की शक्तियों का विधिवत् प्रयोग करके अभीष्ट प्रयोजन पूरा किया जाता है।

समझा जाता है कि किसी समर्थ मार्गदर्शक, देवता या मंत्र की कृपा से अद्भुत शक्तियाँ मिलती हैं और साधना से चमत्कारी आत्मिक प्रगति का अवसर मिल जाता है। यदि यह तथ्य सच हो तो भी उसके मूल में व्यक्ति की पात्रता वाली शर्त अनिवार्य रूप से जुड़ी रहती है।

गुरुदेव ने उसी गायत्री मंत्र की उपासना की, जिसे संध्यावंदन के समय आमतौर से सभी धर्मप्रेमी हिंदू जपा करते हैं। उनका भी इष्ट वही सविता देवता था, जिसे उपासना करने वाले सामान्यतया नित्य ही जल चढ़ाते और प्रणाम करते हैं।

समर्थ गुरु उन्हें मिले, पर ऐसे सिद्धपुरुषों से यह पृथ्वी रहित नहीं है और यह भी निश्चित है कि उनका द्वार सभी के लिए खुला पड़ा है। बादल सर्वत्र बरसते रहते हैं। तालाब लाखों मन पानी जमा कर लेते हैं, पर पत्थर की चट्टान पर एक बूँद भी नहीं ठहरता। सूर्य सबके लिए गरमी-रोशनी लेकर उदय होता है, पर जिसने अपने खिड़की-दरवाजे बंद कर रखे हैं, उसे कुछ लाभ सूर्यदेवता भी नहीं पहुँचा पाते। मंत्र और देवताओं में कोई शक्ति न हो, साधना-उपासना का कोई परिणाम न निकलता हो सो बात नहीं है।

प्रश्न पात्रता का है। अधिकारी के पास उपयुक्त साधन अनायास ही खिंचते चले आते हैं। फूल के पास कितनी मधुमक्खी और भौंरे बिना बुलाए ही मँडराने लगते हैं। चुंबक अपने समीपवर्ती लौहकणों को सहज ही खींच लेता है। साधक की पात्रता में ही वह चमत्कार भरा रहता है, जिसके आधार पर मंत्र, देवता और सहायक को सहज ही द्रवित होकर अभीष्ट सामर्थ्य प्रदान करने का वरदान देना पड़ता है।

गुरुदेव गायत्री महामंत्र के माध्यम से ऋतंभरा प्रज्ञा और ब्रह्मवर्चस की साधना करते थे। इन तत्त्वों को वे अपने आत्मदेवता में ही समाविष्ट मानते थे। कहते थे सबसे निकट तपोवन अपना अंत:करण ही है, यहीं एकनिष्ठ होकर ब्रह्मचेतना में तादात्म्य स्थापित करने का जो प्रयत्न किया जाता है, वही सच्ची साधना है।

विश्वव्यापी देवसत्ता का प्रतिनिधित्व अपनी अंतश्चेतना करती है, सो यदि उसे ही मना लिया जाए, उठा लिया जाए तो फिर इस संसार की कोई ऐसी वस्तु शेष नहीं रह जाती, जो प्राप्त न की जा सके।

ईश्वर के राजकुमार मनुष्य के लिए अपने पिता की हर संपदा का सहज अधिकार प्राप्त है। पात्रता और उपयोग के प्रयोजन की उत्कृष्टता सिद्ध करके कोई भी विभूतियों के भंडार में से कुछ भी प्राप्त कर सकता है।

गुरुदेव की साधनापद्धति को जितना मैंने देखा-समझा, उतना अवसर शायद ही और किसी को मिला हो। 24 वर्षों तक हर वर्ष एक 24 लक्ष का गायत्री महापुरश्चरण वे करते रहे।

सर्वसाधारण को इस संदर्भ में इतनी भर जानकारी है कि प्रतिदिन 6 घंटा बैठकर वे 11 माला प्रतिघंटा के हिसाब से 66 माला का गायत्री जप करते थे।

परम सात्त्विक पाँच मुट्ठी आहार पर निर्भर रहते तथा अनुष्ठान काल में प्रयुक्त होने वाले बंधन प्रतिबंधों का कठोरता से पालन करते थे।

वस्तुतः यह तो उनकी स्थूल और दृश्य साधना थी। जितना देखा जा सके, मोटेतौर से उतना ही तो समझा जा सकता है। उनका बाह्य उपासना क्रम इतना ही दिखता था, सो समझने वाले उतना ही समझ सकते थे, पर वस्तुतः उनकी साधना इस सूक्ष्म क्रियाकलाप तक ही सीमित नहीं थी, वरन काया के कर्मकांडात्मक क्रियाकलापों से बहुत आगे बढ़कर मन और प्राण की सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर की परिधि में प्रवेश कर गई थी। ❑

एक व्यक्ति एक महात्मा जी के पास आकर रोने-गिड़गिड़ाने लगा। महात्मा जी ने उससे उसकी व्यथा का कारण पूछा तो वह बोला—"महाराज! मैं बड़ा दरिद्र हूँ, यदि आपके आशीर्वाद से धन-दौलत मिल जाए तो मन को शांति मिले।" महात्मा बोले—"पुत्र! धन-दौलत से आज तक किसी के मन को शांति नहीं मिली तो तुझे कैसे मिल सकेगी?" बहुत समझाने पर भी जब वो नहीं माना तो महात्मा जी ने उसे एक पारसमणि दी और कहा—"इसे लोहे से छुला कर वो उसे सोने में बदल सकता है, पर मणि उसके पास केवल एक दिन रहेगी।"

मणि पाकर वह व्यक्ति प्रसन्नता से बावला हो गया। उसने शहर के चक्कर लगाने प्रारंभ किए, ताकि ज्यादा-से-ज्यादा सस्ता लोहा इकट्ठा कर सके। पूरा दिन ऐसे ही बे-वजह भागते-दौड़ते निकल गया। न लोहा इकट्ठा कर सका और न उसे सोने में बदल पाया। शाम को मणि वापस लौटानी पड़ी।

मनुष्य को भी जीवन देवता के रूप में पारसमणि मिली हुई है और समय पर इसका उपयोग न कर पाने के कारण मनुष्य को भी उसी व्यक्ति की तरह पछताना पड़ता है, जो मणि हाथ में होते हुए भी दरिद्र ही बना रहा।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार–182

भारतीय समाचारपत्रों पर शोध

समय के साथ परिवर्तन एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। परिवर्तन को स्वीकार करके ही देश–काल–परिस्थितियों से सामंजस्य–संतुलन को बनाए रखना संभव हो पाता है। मानव सभ्यता के अद्यतन विकास के पीछे की सच्चाई भी यही है कि पीढ़ी–दर–पीढ़ी व्यक्ति एवं समाज ने बढ़ते समय के साथ उत्तरोत्तर स्वयं को परिवर्तनशीलता के अनुरूप ढालने का प्रयास–पुरुषार्थ किया है। परिवर्तन का यह दौर प्रत्येक युग में वर्तमान रहता है।

इस आधुनिक युग की भी यही सच्चाई है कि इसमें भी मानवीय जीवन के विभिन्न आयामों, यथा—जीवनशैली, चिंतन, रहन–सहन, आस्था–मूल्य, वेश–विन्यास से लेकर जीवन के दृष्टिकोण तक में अप्रत्याशित परिवर्तन उत्पन्न हो गया है।

परिवर्तनशीलता के संदर्भ में यदि इस युग के किसी भी पक्ष का मूल्यांकन करना हो तो यह ध्यान रखना आवश्यक होगा कि किसी भी परिवर्तन में कुछ बातें नई जुड़ती हैं तो कुछ चीजें पीछे छूट जाती हैं। कुछ सकारात्मक मिलता है तो कुछ विसंगतियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं। परिवर्तन के साथ यह तथ्य सभी कालों में समान रूप से प्रभावी रहता है। इस प्रभाव को व्यक्ति एवं समाज के किसी भी आयाम में परखा जा सकता है।

परिवर्तनशीलता के प्रभाव एवं परिणामों को दरसाने वाला एक विशिष्ट शोध अध्ययन, जिसमें हिंदी सिनेमा की आधुनिक युग में दिशा और दशा की अनुसंधानपरक विवेचना मौजूद है, का सारांश विगत अंक में प्रस्तुत किया गया था।

उस विशिष्ट शोध अनुसंधान को देव संस्कृति विश्वविद्यालय में पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग के अंतर्गत संपन्न किया गया था। इसी क्रम में एक और विशिष्ट एवं महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन वर्ष–2019 में भी संपन्न किया गया है।

इस अध्ययन का विषय है—**'इनोवेशंस इन हिंदी डैलिस विद रेफेरेन्स टू टेक्नोलॉजी एंड कन्टेंट'** अर्थात दैनिक समाचारपत्रों में नवाचार के रूप में आए परिवर्तन और इसके साथ जुड़ी प्रौद्योगिकी व विषय–वस्तु से जो प्रभाव उत्पन्न हुआ है, इस तथ्य का यह शोध अध्ययन वैज्ञानिक रीति से विश्लेषण एवं विवेचन प्रस्तुत करता है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग के अंतर्गत संपन्न इस अध्ययन को शोधार्थी अमित शुक्ला द्वारा विश्वविद्यालय के **श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी** के विशेष संरक्षण एवं डॉ० स्मिता वसिष्ठ के निर्देशन में पूरा किया गया है। प्रायोगिक एवं वैज्ञानिक विधि से संपन्न इस शोध को कुल सात अध्यायों में वर्गीकृत कर प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम अध्याय **'विषय परिचय'** है। इसके अंतर्गत अध्ययन की आवश्यकता, साहित्यिक सर्वेक्षण, शोध के उद्देश्य एवं अनुसंधान विधि को प्रस्तुत किया गया है। भारतीय समाज के संदर्भ में जनसंचार माध्यमों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। इनमें भी हिंदी व अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के दैनिक अखबारों को पढ़ने वाला वर्ग सर्वाधिक है।

समय के साथ सामंजस्य बिठाते हुए पाठकों की रुचि, आवश्यकता और मूल्यों के अनुरूप समाचार पत्रों के प्रकाशन संस्थानों-संपादकों ने अपना उत्तरदायित्व बखूबी निभाया है, परंतु आधुनिकता की दौड़ और प्रगतिशीलता की चुनौती से दैनिक अखबार का क्षेत्र भी सर्वथा अछूता नहीं रहा है।

समय के साथ प्रौद्योगिकी का प्रयोग और विषय-सामग्री, संदर्भों में परिवर्तन से इस क्षेत्र में भी नवीन चुनौतियाँ और विसंगतियाँ आ गई हैं। हिंदी भाषा में दैनिक समाचारपत्रों का प्रकाशन सबसे ज्यादा संख्या में होता है और इसके पाठक भी सर्वाधिक हैं।

प्रिंट मीडिया, प्रेस और प्रकाशन उद्योग में हिंदी दैनिक समाचारपत्रों का अग्रणी स्थान रहा है। इस संदर्भ में शोधार्थी ने इंडियन-रीडरशिप सर्वे (आई०आर०एस०) 2014 की रिपोर्ट के आधार पर प्रमुख हिंदी समाचारपत्र एवं प्रकाशन संस्थाओं से जुड़े महत्त्वपूर्ण तथ्य प्रस्तुत किए हैं।

इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में समाचारपत्रों ने नवाचार को अपनाते हुए इंटरनेट के माध्यम से ई-फार्मेट का स्वरूप ग्रहण कर लिया, जिसका सीधा प्रभाव प्रिंटिंग स्वरूप और उससे जुड़े लोगों एवं पाठकों पर पड़ा। ई-फार्मेट में समाचारों की विषय-वस्तु में भी बदलाव आया और उसका संक्षिप्तीकरण भी होता गया।

टेलीविजन के माध्यम से अनेक स्वतंत्र न्यूज-चैनल आने तथा उन पर सभी प्रमुख घटनाओं का त्वरित प्रसारण हो जाने से भी समाचारपत्रों को नई खबरें छापने की चुनौती तथा विषय-सामग्री को परिवर्तित करने की दिशा में कदम उठाना पड़ा। पाठकों को जोड़े रखने और उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए हिंदी समाचारपत्रों ने नवाचार को तेजी से अपनाया है, जिसमें तकनीकी पक्ष, रणनीतिक पक्ष एवं संपादकीय पक्ष में आए परिवर्तन उसके प्रभाव को जानना महत्त्वपूर्ण है।

शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षणात्मक शोध-विधि को प्रयुक्त करते हुए हिंदी समाचारपत्रों के प्रकाशन में तकनीकी एवं कन्टेंट (विषय-सामग्री) के स्तर पर अपनाए गए नवाचार और उसके प्रभावों को प्रायोगिक तथ्यों के रूप में प्रस्तुत किया है। सर्वेक्षण के लिए दिल्ली-एन०सी०आर० के क्षेत्र में दैनिक जागरण एवं दैनिक भास्कर दैनिक हिंदी समाचारपत्रों का चयन कर वैज्ञानिक रीति से उनकी विषय-सामग्री, तकनीकी पक्षों एवं अन्य विशेषताओं की जानकारी प्राप्त की गई।

प्रश्नावली के माध्यम से संपादक, सह-संपादक, तकनीकी सहयोगियों आदि से समाचार पत्र में आए परिवर्तन के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्त किए गए। इसके साथ ही पत्रकारों व पत्रकारिता से जुड़े व्यावसायिक प्रतिष्ठान तथा उनके कर्मचारियों की कार्यशैली के संदर्भ में भी आवश्यक जानकारी एकत्रित की गई। उक्त सर्वेक्षण के तथ्यों के साथ-साथ समाचारपत्रों के लेख, पत्रिकाएँ, शासकीय विभागों, पुस्तक संस्थानों आदि से भी महत्त्वपूर्ण तथ्य प्राप्त किए गए।

द्वितीय अध्याय है—**प्रिंट मीडिया** का ऐतिहासिक एवं सैद्धांतिक संदर्भ। इसके अंतर्गत प्रिंट मीडिया का तकनीकी विकास, प्रारूप एवं विषय-सामग्री प्रस्तुतीकरण के मानदंडों का निर्धारण, कंप्यूटर का उपयोग और समाचारपत्रों के कंप्यूटरीकृत स्वचालन आदि की विस्तृत विवेचना की गई है।

भारत में पहला समाचारपत्र 29 जनवरी, 1780 में 'बंगाल गजट' के रूप में आया, लेकिन हिंदी भाषा का समाचारपत्र 'उदंत मार्तंड' सन् 1826 में कोलकाता (कलकत्ता) से प्रकाशित हुआ।

इस साप्ताहिक पत्र के साथ प्रारंभ हुए हिंदी अखबारों ने तेजी से प्रगति की और दैनिक रूप से अनेक हिंदी समाचारपत्र निकलने लगे।

सन् 1924 तक आते-आते हिंदी समाचार पत्रों की संख्या सौ से अधिक हो गई। उस काल में आज, अर्जुन, स्वतंत्र और कलकत्ता समाचारपत्र अत्यंत प्रसिद्ध हुए। आज समाचारपत्र जो वाराणसी से प्रकाशित होता था की तो स्वतंत्रता के संघर्ष में महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

भारतीय स्वतंत्रता के पश्चात हिंदी-दैनिक समाचारपत्रों की संख्या में बढ़ोत्तरी के साथ-साथ उसके स्वरूप में भी तकनीकी रूप से विकास हुआ। समाचारपत्र छापने के लिए सर्वप्रथम हैंडसेटिंग तकनीक अपनाई गई। इसके पश्चात मशीन सेटिंग, फोटोटाइप सेटिंग, टाइपराइटर कंपोजिंग से होते हुए तकनीकी विकास की यह यात्रा कंप्यूटराइज्ड युग तक आ गई।

कंप्यूटर के आने से कार्यशैली में आमूलचूल परिवर्तन हो गया और प्रेस, न्यूजरूम, पत्रकार, संवाददाता, लेखन, प्रकाशन आदि सभी स्तर पर अप्रत्याशित परिवर्तन देखा गया।

एक ही समाचारपत्र के क्षेत्रीय स्तर पर अनेक संस्करण निकलने लगे, विषय सामग्री भी वर्गीकृत हुई और समाचार बनने तथा पाठकों तक पहुँचाने की अवधि भी कम हो गई। अनेक तरह के आधुनिक सॉफ्टवेयर प्रोग्राम आने से समाचार पत्रों का प्रकाशन एक स्वचालित प्रक्रिया बन गई। सैकड़ों लोगों का कार्य एक ही स्थान पर सॉफ्टवेयर द्वारा बस, एक क्लिक मात्र से संभव होने लगा।

शोध अध्ययन का तृतीय अध्याय '**केस स्टडीज**' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके अंतर्गत जेपीएल अर्थात जागरण प्रकाशन लिमिटेड के दैनिक हिंदी समाचारपत्र 'दैनिक जागरण' तथा डीपी कार्पोरेशन लिमिटेड के अखबार 'दैनिक भास्कर' को अध्ययन हेतु चयनित किया गया है। इस केस स्टडी में शोधार्थी ने इन समाचारपत्रों के संपादकीय कार्य, न्यूज कक्ष के प्रबंधन तथा प्रकाशन के पूर्व की तैयारी, छापने की प्रक्रिया और छपने के पश्चात की प्रक्रिया को तथ्यात्मक रूप से विवेचित किया है।

इन दैनिक समाचारपत्रों का भारत के विभिन्न राज्यों में जब से प्रकाशन प्रारंभ हुआ और जिस शहर से क्षेत्रीय दैनिक अंक प्रकाशित होते हैं, उन सभी का विस्तृत तथ्यात्मक विवरण शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

उक्त दोनों हिंदी दैनिक समाचारपत्रों का आकार, स्तर, भाषा, प्रकाशन, मुख्य संपादन आदि की प्रामाणिक जानकारी देते हुए इनके पाठकों की घटती-बढ़ती संख्या तथा समय के साथ परिवर्तित पहलुओं पर भी इस अध्याय में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। मीडिया प्रबंधन एवं संपादन के तकनीकी पक्षों को भी यहाँ उजागर किया गया है।

चतुर्थ अध्याय है—**इंटरव्यू एंड एनालिसिस**। इसके अंतर्गत शोधार्थी द्वारा निर्मित प्रश्नावली के आधार पर हिंदी दैनिक समाचार पत्रों के संपादन, सह-संपादक, तकनीकी सदस्यों का साक्षात्कार किया गया तथा प्राप्त तथ्यों की तुलनात्मक एवं विश्लेषणात्मक दृष्टि से विवेचना की गई है।

समय के साथ उत्पन्न चुनौतियों, पाठकों की रुचि, तकनीकी विकास एवं प्रयोग आदि के संदर्भ में आवश्यक तथ्य एवं जानकारी प्राप्त कर परिवर्तन के महत्त्वपूर्ण पहलुओं को प्रस्तुत किया गया है। शोध में अनेकों प्रतिष्ठित संपादकों का साक्षात्कार लिया गया है।

अध्ययन का पंचम अध्याय '**सर्वे रिजल्ट्स**' है। इसके अंतर्गत सर्वे से प्राप्त तथ्यों के ग्राफ के माध्यम से वर्गीकृत प्रश्नों के संदर्भ में परिणामों की विवेचना प्रस्तुत की गई है। इस सर्वे के लिए शोधार्थी द्वारा दैनिक जागरण, नवभारत टाइम्स, दैनिक भास्कर, अमर उजाला जैसे प्रमुख हिंदी दैनिक समाचारपत्रों के सौ पत्रकारों को नामांकित किया गया था।

सर्वे के परिणामों में पाया गया कि चयनितों में से न्यूनतम 90 % लोग दैनिक समाचारपत्र के सदस्य हैं और उनमें 88 % लोग पत्र की प्रकाशित प्रति पढ़ते हैं, साथ ही इनमें से 60 % अखबार की ई-कॉपी ऑनलाइन माध्यम से भी पढ़ते हैं। 70 % ऐसे लोग थे, जो अन्य डिजिटल माध्यम की अपेक्षा दैनिक समाचारपत्रों से समाचार पढ़ने-जानने को प्राथमिकता देते थे।

साथ ही उनकी यह भी राय थी कि ऑनलाइन माध्यम की अपेक्षा प्रकाशित प्रति से समाचार पढ़ना ज्यादा अच्छा अनुभव कराता है। 82 % लोग समाचारपत्रों को विस्तृत जानकारी एवं सूचनाप्राप्ति का एकमात्र माध्यम मानते हैं। इसी तरह दैनिक समाचारपत्रों के अन्य आयामों से संबंधित प्रश्नों को भी सर्वे में सम्मिलित कर उनकी तथ्यात्मक जानकारी प्रस्तुत की गई है।

षष्ठ अध्याय में **शोध परिणामों की विस्तृत चर्चा एवं व्याख्या** प्रस्तुत की गई है। परिणाम विवेचना में जिन महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है, वे हैं—तकनीकी विकास एवं नवाचार की दृष्टि से समाचारपत्रों के प्रकाशन में आए परिवर्तन के सकारात्मक पक्ष, नई तकनीकों के उद्योग-क्षेत्र पर पड़ने वाले प्रभाव, समाचारपत्रों की विषय-सामग्री एवं पाठकों के स्तर में आए परिवर्तन, एक उद्योग की दृष्टि से हिंदी समाचारपत्रों के भविष्य की दिशा, समाचारपत्रों में उत्पन्न परिवर्तनशीलता के कारणों तथा व्यावसायिक गतिशीलता में संतुलन बनाए रखने की प्रक्रिया आदि। इस तरह के बिंदुओं के माध्यम से शोध अध्ययन की उपलब्धियों को स्पष्ट रूप से सामने लाया गया है।

शोध का अंतिम सोपान '**उपसंहार**' के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके अंतर्गत शोध अध्ययन का सारांश प्रस्तुत करते हुए निष्कर्ष रूप में शोधार्थी द्वारा हिंदी दैनिक समाचारपत्रों के प्रिंटकॉपी एवं ई-कापी दोनों के लिए वर्तमान चुनौतियों, समस्याओं एवं संभावनाओं की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए हैं। नई तकनीकों एवं नवाचार को आत्मसात् करने के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है तथा तीव्र गति से परिवर्तित होते समय के अनुसार हिंदी समाचारपत्रों की विषय-वस्तु के निर्धारण एवं प्रस्तुतीकरण के महत्त्वपूर्ण सूत्र तथा दिशा-निर्देश दिए गए हैं।

हिंदी दैनिक समाचारपत्रों की अद्यतन यात्रा को प्रभावित, परिवर्तित और विकसित करने वाले पहलुओं को तथ्यात्मक एवं वैज्ञानिक रीति से प्रस्तुत करने वाला यह विशिष्ट शोध अध्ययन पत्रकारिता जगत् से जुड़े लोगों के लिए अत्यंत प्रासंगिक एवं उपादेई है। ❑

भगवान के हम कोई संबंधी थोड़े ही हैं, जो उनने हमारे साथ कोई विशेष पक्षपात किया हो। तब तुम्हें भी क्यों नहीं वही सब मिल सकता है, जो हमें मिला। बस, कसौटी एक ही 'अहं' को गलाना, विसर्जन, समर्पण। जब तक अहंकार जिंदा है, आदमी दो कौड़ी का है। जिस दिन वह मिट जाएगा, आदमी बेशकीमती हो जाएगा। 'अहं' ही है जिसके कारण न सिद्धांत, न सेवा, न आदर्श आ पाते हैं। व्यक्ति लोकसेवा के क्षेत्र में प्रवेश करके भी उच्छृंखल स्तर का अनगढ़ बना रहता है। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

युगगीता — 289

संन्यास के अर्थ हरेक के लिए अलग

(श्रीमद्भगवद्गीता के मोक्ष संन्यास योग नामक अठारहवें अध्याय की द्वितीय एवं तृतीय किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय के प्रथम श्लोक की व्याख्या प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि हे महाबाहो! हे हृषीकेश! हे केशिनिषूदन! मैं संन्यास एवं त्याग का अलग-अलग अर्थ जानना चाहता हूँ। अर्जुन की यह जिज्ञासा इस भाव के साथ आई है, ताकि उनके सम्मुख उनके जीवन का पथ प्रशस्त हो सके। इसी कारण से वे श्रीभगवान के लिए तीन संबोधनों का प्रयोग करते हैं और कहते हैं कि हे महाबाहो! यहाँ वे भगवान कृष्ण को महाबाहो कहकर पुकारते हैं, क्योंकि उस संबोधन का तात्पर्य सर्वज्ञता से है और उन्हें ज्ञात है कि भगवान समस्त विषयों का समानरूपेण समाधान करने में सक्षम हैं।

इसके बाद वे उन्हें हृषीकेश कहकर पुकारते हैं। हृषीकेश संबोधन का तात्पर्य अंतर्यामी अथवा जितेंद्रिय से है। अर्जुन भगवान से ऐसा कहते हैं; क्योंकि वे अब ये जानते हैं कि भगवान शब्दों के पीछे निहित उनके मनोभावों से परिचित हैं, अतः वे उनको भाँपकर उन्हीं के अनुरूप उत्तर प्रदान कर दें। इसके बाद वे भगवान कृष्ण को केशिनिषूदन कहकर पुकारते हैं अर्थात केशि नामक दैत्य के संहारक जो विघ्ननाशक भी हैं, ताकि उनकी जिज्ञासा का शमन करते समय उनके पथ पर जो भी विघ्न आएँ, उनका वे सम्यक दृष्टि से शमन कर सकें। इसके उपरांत वे एक बड़ा ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न करते हैं कि हे भगवान! कृपया आप मुझे त्याग एवं संन्यास को अलग-अलग समझाएँ। ऐसा इसलिए; क्योंकि अनेकों लोग इन दोनों को एक ही मानकर बैठ जाते हैं। अर्जुन को अब यह स्पष्ट हो चला है कि संन्यास का संबंध बाह्य त्याग से नहीं, वरन आंतरिक त्याग से है। इसी कारण से वे दोनों अलग-अलग जानने की इच्छा व्यक्त करते हैं।]

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि

काम्यानां कर्मणां न्यासं, सन्न्यासं कवयो विदुः।
सर्वकर्मफलत्यागं, प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः॥ 2॥

शब्दविग्रह—काम्यानाम्, कर्मणाम्, न्यासम्, सन्न्यासम्, कवयः, विदुः, सर्वकर्मफलत्यागम्, प्राहुः, त्यागम्, विचक्षणाः।

शब्दार्थ—पंडितजन (तो) (**कवयः**), काम्य (**काम्यानाम्**), कर्मों के (**कर्मणाम्**), त्याग को (**न्यासम्**), संन्यास (**सन्न्यासम्**), समझते हैं (तथा दूसरे)(**विदुः**), विचार कुशल पुरुष (**विचक्षणाः**), सब कर्मों के फल के त्याग को (**सर्वकर्मफलत्यागम्**), त्याग (**त्यागम्**), कहते हैं। (**प्राहुः**)।

त्याज्यं दोषवदित्येके, कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यमिति चापरे॥ 3॥

शब्दविग्रह—त्याज्यम्, दोषवत्, इति, एके, कर्म, प्राहुः, मनीषिणः, यज्ञदानतपःकर्म, न, त्याज्यम्, इति, च, अपरे।

शब्दार्थ—कई एक (**एके**), विद्वान (**मनीषिणः**), ऐसा (**इति**), कहते हैं (कि) (**प्राहुः**), कर्ममात्र (**कर्म**), दोषयुक्त हैं (इसलिए) (**दोषवत्**), त्यागने के योग्य हैं (**त्याज्यम्**), और (**च**), दूसरे विद्वान (**अपरे**), यह (**इति**), कहते हैं (कि) (**आहुः**), यज्ञ, दान और तपरूप कर्म (**यज्ञदानतपःकर्म**), त्यागने योग्य नहीं हैं। (**न त्याज्यम्**)।

अर्थात श्रीभगवान बोले—कई विद्वान काम्य कर्मों के त्याग को संन्यास समझते हैं तो कई विद्वान संपूर्ण कर्मों के फल के त्याग को त्याग कहते हैं। कई विद्वान ऐसा कहते हैं कि कर्मों को दोष की तरह छोड़ देना चाहिए और कई विद्वान ऐसा कहते हैं कि यज्ञ, दान और तपरूपी कर्मों का त्याग नहीं करना चाहिए। अर्जुन की जिज्ञासा का उत्तर देते समय में पहले भगवान इस विषय में उपलब्ध सभी तरह के मतों को प्रस्तुत करते हैं।

वे कहते हैं कि इस विषय में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ तो ऐसा समझते हैं कि मात्र काम्य कर्मों का त्याग ही संन्यास है तो कुछ के अनुसार संपूर्ण कर्मफलों को ही त्याग देना चाहिए—तभी संन्यास सध पाता है।

कर्मफल का त्याग अर्थात '**सर्वकर्मफल-त्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः**' को मानने वालों के अतिरिक्त कुछ ऐसे हैं, जो सभी कर्मों के त्याग की बात करते हैं अर्थात '**त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः**।' कुछ विद्वान ऐसे हैं जो ये कहते हैं कि त्यागते समय हमें चयन करके त्यागना चाहिए अर्थात दूसरे कर्मों को भले ही त्याग दिया जाए, परंतु यज्ञ, दान, तप जैसे कर्मों को नहीं त्यागना चाहिए।

श्रीभगवान का यह उत्तर प्रचलित शास्त्रीय अवधारणा के अनुरूप है। शास्त्रीय दृष्टि में कर्मों के कुछ प्रकार होते हैं, यथा दैनिक किए जाने वाले आवश्यक कर्म जो नित्य कर्म कहलाते हैं, जैसे नित्य की पूजा-उपासना।

दूसरे कर्म नैमित्तिक होते हैं जो देश, काल, परिस्थिति को निमित्त बनाकर किए जाते हैं, जो कुछ व्यर्थ प्रायश्चित कर्म होते हैं, जिनका उद्देश्य हमारे द्वारा पूर्वकृत कर्मों के दंड से मुक्त होना होता है तो वहीं कुछ कर्म आवश्यक कर्त्तव्यकर्म होते हैं।

एक अन्य अवधारणा के अनुसार 1. नित्य, 2. नैमित्तिक, 3. काम्य एवं 4. निषिद्ध—ये कर्मों के चार प्रकार माने गए हैं। उस अवधारणा के अनुसार नित्य, नैमित्तिक सत्कर्म में आते हैं तो किए जाने चाहिए। काम्य एवं निषिद्ध त्याज्य कर्मों की श्रेणी में आ जाते हैं।

सांसारिक कर्म सामान्यतया काम्य ही होते हैं एवं त्याज्य कर्मों को कभी भी नहीं किया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त कुछ ज्ञानियों के अनुसार सदोष कर्मों का त्याग करना चाहिए या यों कहें कि कर्म ही दोषरूप हैं, ऐसा समझकर सभी कर्मों का त्याग करना चाहिए अथवा कुछ कर्मों, जैसे यज्ञ, तप एवं दान को छोड़कर शेष कर्मों का त्याग कर देना चाहिए।

इस तरह श्रीभगवान इन श्लोकों में प्रचलित मान्यताओं के विषय में अर्जुन को बताते हैं, ताकि आगे के श्लोकों में इस विषय में सही धारणा से अर्जुन को अवगत करा सकें। (क्रमशः)

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

प्रायश्चित का पर्व (प्रथम किस्त)

परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों की यह मौलिकता है कि उनको एक बार सुन लेने वाला व्यक्ति अपने जीवन को सन्मार्ग की ओर ले चलने के लिए विवश हो उठता है। उनके शब्द संवेदना को जाग्रत भी करते हैं और अंतर्मन को झकझोरते भी हैं। रक्षाबंधन के पुनीत अवसर पर उनके द्वारा दिए गए एक ऐसे ही विशिष्ट उद्बोधन में परमवंदनीया माताजी कहती हैं कि रक्षाबंधन का पर्व प्रायश्चित का पर्व है और चिंतन-मनन का पर्व है। इस पर्व का तात्पर्य है कि जो दोष और दुर्गुण हमारे भीतर हैं, उनको हम आस्था-श्रद्धा-विश्वास के आधार पर धोने और बाहर निकालने का कार्य संपन्न करें। वंदनीया माताजी कहती हैं कि रक्षाबंधन का सही पर्व तब मन पाता है, जब हम एक अच्छा और सच्चा इनसान बनने का प्रयत्न करते हैं। अपने अहंकार को त्यागने का प्रयत्न करते हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........

प्रायश्चित का पर्व

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

हमारे आत्मीय परिजनो! आज रक्षाबंधन का पर्व है। यों तो यह बहन-भाई का भी पर्व है। बहन अपने भाई को राखी बाँधती है और वह आशा करती है कि उसका भाई उसकी रक्षा करेगा। पर्व का एक और दूसरा पक्ष है कि यह प्रायश्चित का पर्व है। हमने एक वर्ष में क्या-क्या भूलें की हैं और हमारे अंदर क्या-क्या कमियाँ थीं? हमारे अंदर क्या दोष और दुर्गुण थे? उनको हम न दोहराएँ।

यह प्रायश्चित का पर्व है, जिसका कि आज आपको पूजन कराया गया है। आपको दस स्नान कराए गए हैं, आपका यज्ञोपवीत बदला गया है। आज आपका शुद्धिकरण कराया गया है। तो अब तक हम अशुद्ध थे? हाँ, अब तक अशुद्ध थे। आज आपकी शुद्धि हुई है और आगे के लिए आपने यह प्रण किया है कि हम जीवनभर उन गलतियों को न दोहराएँगे, जो हम पूर्व में कर चुके हैं। यदि वे गलतियाँ आगे बढ़ती हुई चली गईं, तो फिर यह प्रायश्चित का पर्व क्या रहा? यह प्रायश्चित का पर्व है।

चिंतन-मनन का पर्व

यह चिंतन और मनन का पर्व है और दोषों को धोने का यह पर्व है। यह पर्व हमको चिल्ला-चिल्लाकर कहता है कि हमारे अंदर कोई बुराइयाँ तो नहीं पनप रहीं, यदि पनप रही हैं, तो हम उन्हें निकाल दें। दीक्षा का क्या अर्थ है? दीक्षा का मतलब है—जुड़ जाना। किससे जुड़ जाना? उस महान शक्ति से जुड़ जाना, जो प्रेरणा का स्रोत है। शक्ति से जुड़ जाना, उस शक्ति को पा लेना, उसके

प्रकाश को पा लेना और अपने रोम-रोम को प्रकाशित कर लेना। हमारे रोम-रोम में प्रकाश फैलता हुआ चला जा रहा है। गुरुजी का प्रकाश और माताजी का प्यार एवं दुलार, गुरुजी के तप का अंश, माताजी के तप का अंश। यह हमारे अंदर घुलता हुआ चला जा रहा है। यही दीक्षा का तात्पर्य है।

बेटे! इस पर्व का तात्पर्य है कि जो दोष और दुर्गुण हमारे अंदर हैं, तो उनको हम निकालते हैं और आगे के लिए हम प्रण करते हैं। यह पर्व है— रक्षासूत्र का, गुरु अपने शिष्यों को रक्षासूत्र बाँधते थे और यह आश्वासन दिलाते थे कि हम आपकी सदैव रक्षा करते रहेंगे।

ब्राह्मण भी अपने यजमानों को रक्षासूत्र बाँधते रहे हैं। अभी भी यह परंपरा है कि ब्राह्मण अपने यजमानों के यहाँ जाते हैं और रक्षासूत्र बाँधते हैं। यह बात अलग है कि आज न वे ब्राह्मण हैं और न वे बँधवाने वाले रहे।

रक्षासूत्र का मर्म

उन्होंने रक्षासूत्र माँगा और उन्होंने उसको दे दिया, बस मामला साफ। बहन ने भाई को राखी बाँध दी और भाई ने उपहार में कुछ दे दिया, बस खतम हो गया मामला? गुरु ने रक्षासूत्र बाँध दिया, शिष्य ने कुछ दे दिया। नहीं, गुरु अपनी पूरी जिम्मेदारी के साथ बाँधता है और यह कहता है कि हमने इस सूत्र में तुमको बाँध दिया है और बाँधा ही नहीं है, बल्कि आपकी रक्षा का भार हमने अपने ऊपर लिया है। हम सदैव आपकी रक्षा करते रहेंगे। यह हमारा प्रण है। यह गुरु और शिष्य का पर्व है, यह प्रायश्चित का पर्व है। यह रक्षाबंधन का पर्व है, जिसमें रक्षासूत्र बाँधा जाता है। यह जिम्मेदारी का पर्व है।

चलिए अब आगे चलते हैं, आप नौ दिन का सत्र करने आए हैं, एक महीने का सत्र आप करेंगे। आप सबको संकल्प दिलवाया गया है। पूरे मनोयोग से और पूरी निष्ठा के साथ आप अपने संकल्प को पूरा करेंगे। हमारे अंदर यदि भावनाओं की कमी हो जाती है और श्रद्धा की कमी हो जाती है, आस्था की कमी हो जाती है, तो फिर कुछ हाथ नहीं लगता है।

आस्था—एक, श्रद्धा—दो और विश्वास—तीन आधारस्तंभ हैं। यह तीनों ही हमारे जीवन में काम आते हैं। इन तीनों में ही कोई कमी नहीं आनी चाहिए।

यह दिनोंदिन विकसित हों; ताकि अंत:करण भी विकसित होता हुआ चला जाए। नहीं, तो वह ज्यों-का-त्यों बना रहे, तो फिर न आपकी दीक्षा काम आई और न आपका अनुष्ठान काम आया, केवल आपने मालाभर घुमाई है। माला घुमाने से आपका क्या भला होगा? कुछ भला नहीं होगा, वह तो आपने ढाई घंटे पूरे किए हैं। आपने हृदय से माला को नहीं फेरा।

कर का मनका छोड़कर, मन का मनका फेर

"कर का मनका छोड़कर, मन का मनका फेर।" यदि मन का मनका आपने फेरा है, तो आपका अनुष्ठान पूर्ण माना जाएगा और इस बीच में आपने कामनाओं को स्थान दिया, तो फिर आपका अनुष्ठान पूर्ण नहीं हुआ; क्योंकि आप तो कामना लेकर के आए थे। आप तो आशीर्वाद के लिए आए थे। आशीर्वाद तो आपको मिलेगा ही, इसमें तो कोई दो राय है ही नहीं।

इस स्थान पर आप आए हैं और जिसका विश्वास लेकर के आए हैं, जिसके आँचल के नीचे आए हैं और जिसकी छत्रछाया के नीचे आप आए हैं, तो वह तो आपको मिलेगा ही; लेकिन आपने अपनी तरफ से कोई प्रयास नहीं किया है, तो आपको कितना मिलेगा? बताइए न? थोड़े दिन

आशीर्वाद काम करेगा। फिर तो अपना पुरुषार्थ ही काम करेगा।

संत हृदय नवनीत समाना

बेटे! आपको पुरुषार्थ करना चाहिए। कौन-सा पुरुषार्थ? अपनी आस्था का, अपनी श्रद्धा का, अपने विश्वास का। कौन-सा विश्वास? जो शंकर जी ने कहा था कि श्रद्धारूपी पार्वती और विश्वासरूपी शंकर मैं उनको नमन करता हूँ। भक्त की यह कसौटी है कि उसका अंत:करण कैसा है? मलिनताओं से भरा हुआ है अथवा उसका एक संत जैसा हृदय है। तो संत का हृदय कैसा होता है? संत का हृदय बहुत कोमल होता है।

'संत हृदय नवनीत समाना' है। संत का जो हृदय है, वह मक्खन के समान पिघलने वाला होता है। दीन-दुखियों का कष्ट देख करके उसका हृदय द्रवित होने लगता है। जिस तरीके से वाल्मीकि ने एक पक्षी के जोड़े को जब मरते हुए देखा, बिलखते हुए, तड़फड़ाते हुए देखा, तो वे द्रवित होने लगे और द्रवित ही नहीं हुए, वरन उनकी वह द्रवितता एक काव्य के रूप में फूट निकली, जिसको की वाल्मीकि रामायण कहते हैं। इनको ही ऋषि कहते हैं।

ऋषि वे व्यक्ति बन जाते हैं, जो कि अपनी कमी और कमजोरियों को निकाल देते हैं और महानता की ओर चल देते हैं और महान बनते हुए चले जाते हैं। तुलसीदास भी इसी तरीके से बने थे। अन्य भी इसी तरीके से बने हैं। भगीरथ ने लोक-मंगल के लिए तप किया और गंगाजी निकलती हुई चली आईं। शंकर जी ने उनकी सहायता की। आपकी सहायता करेंगे शंकर जी? चाहे जितना बेलपत्र चढ़ाइए, चाहे जो कुछ करिए; लेकिन शंकर जी आपके झाँसे में आने वाले नहीं हैं; क्योंकि आपका हृदय शंकर को पाने लायक हुआ ही नहीं।

जब हुआ नहीं है, तो फिर आप खुशामद करने के लिए गए हैं, कामनाओं के लिए गए हैं। शंकर जी की आप खुशामद कर रहे हैं कि हम आपके ऊपर बेलपत्र चढ़ाते हैं। आज सोमवार है और हम आपके ऊपर बेलपत्र चढ़ाते हैं। हमारी कामनाएँ पूरी होनी चाहिए; लेकिन आपकी क्षुद्रता में कमी नहीं आनी चाहिए। क्षुद्रता और संकीर्णता जैसी हमारी है, वैसी बनी रहनी चाहिए, तो फिर शंकर के कृपापात्र आप कैसे बन सकते हैं?

शंकर के कृपापात्र तभी बनेंगे जैसे कि शंकर जी ने जहर पिया था और सारे संसार को अमृत बाँटा था। लोक-मंगल के लिए उन्होंने विष का पान किया अर्थात उन्होंने संकटों का सामना किया, जो कि सारे संसार में व्याप्त था। शंकर जी के भक्त आप तभी बन सकते हैं। यदि आपके अंदर उस शीतलता की महत्ता हो, जैसे चंद्रमा उनके सिर पर विराजमान है। वह शीतलता लिए हुए है। आपके भीतर शीतलता होनी चाहिए।

अहंकार को त्यागें

बेटे! कहीं क्रोध तो नहीं आ रहा है, किसी बात पर हम क्रोधित तो नहीं हो रहे हैं? इसके स्थान पर हमारे भीतर शीतलता होनी चाहिए। जो भी बात कहें, तो नम्रतापूर्वक कहें। हम नम्र हैं कि नहीं हैं। कहीं ऐसा तो नहीं कि हमारी जबान पर बिच्छू का डंक हो। जहाँ कहीं भी जाएँ, बिच्छू का डंक मारते हुए चले जाएँ। चाहे घर में हैं, चाहे बाहर में हैं, कहीं हम अहंकारी तो नहीं हैं। नहीं, अहंकार तो है। फिर शंकर जी के भक्त कहाँ से हुए?

बिच्छू, साँप, भूत-पलीद सभी शंकर जी के परिवारीजन थे और उस परिवार में होने पर भी वे कितने गंभीर, कितने कृपालु, कितने दयालु और अहंकाररहित थे। जरा-जरा-सी बात में अहंकार आपके अंदर आता हुआ चला जाता है।

गायत्री माता के भक्त कौन होते हैं ? गायत्री माता किसके ऊपर सवारी करती हैं ? गायत्री माता हंस पर सवारी करती हैं। हंस जैसा पाक-साफ जिसका जीवन हो, विवेकशील जिसका जीवन हो, उस पर गायत्री माता सवारी करती हैं। उसके हृदय में गायत्री माता का निवास होता है। यदि आप एक भक्त होना चाहते हैं, तो आपको भी हंस जैसा जीवन, पवित्र जीवन, साफ-सुथरा जीवन, विवेकशील जीवन जीना पड़ेगा। अपने लिए कम, दूसरों के लिए ज्यादा ब्राह्मणोचित जीवन आपको जीना पड़ेगा।

ब्राह्मण को ही गायत्री मिली है, गायत्री सबको नहीं मिली। तो साहब! क्षत्रिय को या और किसी को नहीं मिलीं ? किसी को भी नहीं मिलीं। माताजी आप यह क्या कह रही हैं ? विश्वामित्र जब तक क्षत्रिय थे, तब तक नहीं मिलीं। जब वह संत और ब्राह्मण हो गए, तब गायत्री माता को वे पा सके तभी गायत्री मंत्र उनको फलित हुआ और जब राम और लक्ष्मण उनके पास आए, तो उन्होंने राम को बला और अतिबला अर्थात गायत्री और सावित्री दोनों ही विद्याएँ, ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ उनको दे डालीं। यह है—भक्त का स्वरूप और संत का स्वरूप।

[क्रमशः अगले अंक में समापन]

एक भक्त भगवान के दर्शनों के लिए व्याकुल था। अपनी आकांक्षा लेकर वह एक संत के पास पहुँचा। संत ने उसे सदना कसाई से मिलने के लिए कहा। भक्त को देखते ही सदना बोला—''तुम भगवान से मिलना चाहते हो; शाम तक प्रतीक्षा करो। साथ घर चलेंगे, तब मार्ग बता पाऊँगा।'' भक्त को आश्चर्य हुआ कि सदना उसके मन की बात कैसे समझ गया ? शाम होने पर सदना भक्त को लेकर घर पहुँचा। वहाँ उसने अपने पिता की सेवा की, बच्चों को प्यार किया और पत्नी से घर का हाल-चाल पूछा। इतना करके उसने भक्त की ओर देखा।

इधर भक्त का मन प्रश्नों से घिरा था। वह सोच रहा था कि भला एक कसाई मुझे ईश्वरप्राप्ति का मार्ग कैसे बता सकता है ? वह ऐसा सोच ही रहा था कि सदना उसे संबोधित करते हुए बोला—''बंधु! तुम सोच रहे होगे कि जो मार्ग संत नहीं बता पाए, वह एक कसाई क्या बता पाएगा ? कसाई कुल में जन्म लेना तो मेरे हाथ में नहीं था, वह तो मैं नहीं बदल सकता था, परंतु जीवन के प्रति दृष्टिकोण को बदलना मेरे लिए संभव था। मैंने जाना कि पिता, पत्नी, बच्चों व समाज के प्रति मेरे उत्तरदायित्व हैं। उन्हें निष्काम भाव से पूर्ण करते हुए मैं भगवान का नाम लेता रहता हूँ और वे भी प्रतिक्षण अपनी उपस्थिति का आभास मुझे कराते रहते हैं।'' सदना की बात सुनकर भक्त की आँखें खुल गईं, उसे ईश्वरप्राप्ति का मार्ग मिल गया।

उत्सव के रंग में रँगा विश्वविद्यालय

देव संस्कृति समूचे जीवन को महोत्सव बनाने की प्रेरणा देती है। यही कारण है कि देवों की इस संस्कृति में जीवन के प्रत्येक अवसर को उत्सव के रूप में मनाने का सुगठित विधान है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने उसी परंपरा को अक्षुण्ण बनाए रखने का सर्वदा प्रयास किया है। वार्षिकोत्सव के भव्य आयोजन में छात्र–छात्राएँ अपनी क्षमताओं का प्रदर्शन करते हैं।

इसी कड़ी में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में त्रिदिवसीय उत्सव का आयोजन अत्यंत प्रभावी और सफलतापूर्वक संपन्न हुआ। इस वर्ष उत्सव की विशेष बात यह रही कि इसमें सांस्कृतिक कार्यक्रमों एवं 75 से अधिक खेलों को संपन्न किया गया, जो अपने आपमें इस उत्सव के प्रति उत्साह को प्रदर्शित करता है।

3 दिन तक चलने वाले इस विशेष आयोजन में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कई प्रतिभागियों ने विभिन्न क्षेत्रों में अपने कौशल का प्रदर्शन किया। नृत्य के क्षेत्र में छत्तीसगढ़, हिमाचल, उत्तराखंड आदि कई राज्यों के विशिष्ट नृत्यों को दिखाया गया। इसके अलावा लघु नाटिका का भी प्रदर्शन किया गया, जो नशा उन्मूलन पर आधारित थी, जिसका प्रदर्शन सभी के लिए प्रेरणादायी रहा।

भारतीय शास्त्रीय संगीत ने भी सभी के हृदय में अपनी जगह बनाई। प्रज्ञागीतों ने परमपूज्य गुरुदेव के विचार क्रांति के उद्घोष को जीवंत और जाग्रत रूप देने का कार्य किया। इसके अलावा कई खेलों में विद्यार्थियों ने प्रतिभाग किया, जिनमें क्रिकेट, वॉलीबाल, फुटबाल, लंबीकूद, दौड़, बैडमिंटन आदि कई खेलों का आयोजन दिखाई दिया।

खेलों के इस आयोजन को जीवंत रूप देने के लिए विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति भी इसका हिस्सा बने, जो कि बेहद गौरवान्वित करने वाला क्षण रहा। इसी क्रम में उत्सव के अंतिम दिवस आयोजन में प्रतिभाग करने वाले विद्यार्थियों का उत्साहवर्द्धन करने के लिए एक विशेष समापन सत्र का आयोजन विश्वविद्यालय परिसर के मृत्युंजय सभागार में आयोजित किया गया।

प्रतियोगिताओं में प्रथम स्थान प्राप्त तथा उपविजेताओं को पुरस्कृत किया गया एवं सभी का उत्साहवर्द्धन किया गया। पुरस्कार वितरण का यह कार्य आदरणीया शेफाली पंड्या जी द्वारा किया गया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, शिक्षा मंत्रालय, उच्चतर शिक्षा विभाग, भारत सरकार के संयुक्त तत्त्वावधान में दो दिवसीय राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन 6 एवं 7 मार्च को किया गया। सम्मेलन का उद्घाटन मुख्य अतिथि के रूप में उत्तराखंड के महामहिम राज्यपाल ले०ज० श्री गुरमीत सिंह जी, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष प्रो० गिरीश नाथ झा जी एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी द्वारा किया गया।

महामहिम राज्यपाल महोदय ने अपने उद्बोधन में कहा कि संस्कृत के मंत्रों के उच्चारण का अपना ही आनंद है। गायत्री परिवार, शांतिकुंज को उन्होंने

आनंद की कुंजी कहा। ओंकार को उन्होंने संस्कृत का सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द बताया और इसकी उच्चारण विधि को भी श्रोताओं के समक्ष प्रस्तुत किया।

प्रतिकुलपति जी ने अपने वक्तव्य में भारतीय संस्कृति की निरंतरता, अमरता और पावनता को रेखांकित किया। उन्होंने यह भी कहा कि संस्कृत विदेशी विद्वानों का भी आदर भाजन रही है और अनेक देशों में संस्कृत में अभी भी शोधकार्य हो रहे हैं।

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के अध्यक्ष प्रो० गिरीश नाथ झा जी ने आयोग के उद्देश्यों और आयोग द्वारा निर्मित किए गए सामान्य जन के उपयोग में आने वाले महत्त्वपूर्ण कार्यों की चर्चा की। सम्मेलन के समापन सत्र में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो० सोमदेव शतांशु जी, वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग के सह-निदेशक एवं कार्यक्रम प्रभारी श्री जयसिंह रावत जी ने तकनीकी शब्दावली पर अपने विचार व्यक्त किए।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में विगत दिनों व्याख्यानमाला कार्यक्रम का भी आयोजन हुआ। इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि के रूप में सड़क एवं परिवहन केंद्रीय मंत्री माननीय श्री नितिन गडकरी जी, उत्तराखंड के माननीय मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी जी, उत्तराखंड विधानसभा सदस्य श्री मदन कौशिक जी उपस्थित रहे।

कार्यक्रम का प्रारंभ पूज्य गुरुदेव-वंदनीया माताजी एवं माँ गायत्री को पुष्प अर्पित कर हुआ। प्रतिकुलपति जी ने कार्यक्रम की रूपरेखा रखी। उन्होंने भारत की भूमि की महिमा बताते हुए भारतीय संस्कृति को दरसाया। माननीय मुख्यमंत्री श्री पुष्कर सिंह धामी जी ने जी-20 की अध्यक्षता को गौरव का विषय मानते हुए सभी गणमान्यों को संबोधित किया और वसुधैव कुटुम्बकम् पर प्रकाश डालते हुए इसकी व्याख्या की।

मुख्य अतिथि केंद्रीय मंत्री श्री गडकरी ने कार्यक्रम को संबोधित करते हुए गायत्री परिवार को व्यक्ति निर्माण की टकसाल बताया। उन्होंने कहा कि व्यक्ति का व्यवहार ही उसे ऊँचा उठाता है। कोई अपनी आँखें तो दान कर सकता है, लेकिन दृष्टि नहीं कर सकता; क्योंकि यह दृष्टि हमें अपने गुरु और माता-पिता से मिलती है। प्रबोधन, शिक्षण, संस्कार से ही व्यक्ति का निर्माण होता है।

मुख्य अतिथि जी ने यह भी कहा कि नैतिकता, अर्थव्यवस्था और पर्यावरण के माध्यम से भारत विश्वगुरु बन सकता है और गायत्री परिवार व्यक्ति निर्माण के माध्यम से भारत को विश्वगुरु बनाने में अपना योगदान कर रहा है। इस अवसर पर जर्नल ऑफ यज्ञ रिसर्च का अनावरण किया गया व साथ ही प्रतिकुलपति महोदय ने सम्मानित अतिथियों को स्मृतिचिह्न, पूज्य गुरुदेव का साहित्य और माँ गंगा का पवित्र जल भेंट किया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं गांधी पुरी आश्रम,बाली, इंडोनेशिया के मध्य अनुबंध के अंतर्गत इंडोनेशिया से एक समूह का आगमन 15 मार्च को हुआ। विश्वविद्यालय की गतिविधियों एवं भारतीय संस्कृति के अनुरूप चल रहे पाठ्यक्रमों से परिचित होने के उपरांत आगंतुकों ने प्रतिकुलपति जी से शिष्टाचार भेंट कर अपने अध्ययन के संबंध में मार्गदर्शन प्राप्त किया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में फ्रांस के 22 प्रतिष्ठित व्यक्तियों के एक समूह का आगमन हुआ। प्रतिकुलपति जी ने मेहमानों का स्वागत कर भारतीय संस्कृति के विषय में व्यावहारिक ज्ञान और एक पूर्ण जीवन जीने में गायत्री मंत्र के गहन महत्त्व को साझा किया। यह सभी के लिए एक समृद्ध अनुभव,

मनमोहक सांस्कृतिक आदान-प्रदान और समझ विकसित करने वाला रहा।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में प्रो० एंटोनिएटा रोज़ी और इटली के 12 सम्मानित व्यक्तियों के उनके प्रतिनिधिमंडल का ज्ञानवर्द्धक अंतरराष्ट्रीय कार्यशाला के लिए आगमन हुआ।

प्रतिकुलपति जी ने आगंतुकों को सामूहिक विकास के लिए मानव उत्कृष्टता, वैज्ञानिक आध्यात्मिकता, यज्ञ के ज्ञान-विज्ञान और मंत्र के विज्ञान जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों पर एक मनोरम व्याख्यान दिया।

ब्राज़ील से 30 लोगों के एक समूह का भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आगमन हुआ। इस समूह ने 8 दिवसीय विशेष कार्यशाला के अंतर्गत योग के उद्भव एवं परंपरा के विषय पर समुचित अध्ययन किया।

दिल्ली विश्वविद्यालय के इंद्रप्रस्थ कॉलेज ऑफ विमेंस् से भी मनोविज्ञान स्नातक की 24 छात्राओं के समूह का आगमन हुआ। यह समूह पूज्य गुरुदेव के विचार, भारतीय संस्कृति एवं वैज्ञानिक अध्यात्मवाद के प्रायोगिक तथ्यों पर ज्ञानार्जन करने के उद्देश्य से आया। विद्यार्थियों ने प्रतिकुलपति महोदय से भेंट कर मनोविज्ञान एवं जीवन प्रबंधन संबंधी जिज्ञासाओं पर चर्चा की।

भारत सरकार के आयुष मंत्रालय के तहत देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने योग कौशल विकास प्रशिक्षण की मेजबानी की। जो चैंपियन सेवा-क्षेत्र योजना के तहत कौशल विकास के लिए प्रधानमंत्री केंद्रीय क्षेत्र योजना का हिस्सा है।

विश्वविद्यालय ने 6 योग प्रशिक्षण शिविर आयोजित किए, जिनमें विभिन्न स्थानों से 1200 उत्सुक प्रतिभागियों ने भागीदारी की। हरिद्वार और आस-पास के क्षेत्रों में आयोजित प्रशिक्षण सत्रों के बाद सैकड़ों उत्साही युवाओं ने अपना प्रशिक्षण पूरा किया। प्रतिभागियों को उनकी उपलब्धि के प्रतीक के रूप में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी द्वारा प्रमाणपत्र वितरित किए गए।

भारत के पूर्वी राज्यों में पूज्य गुरुवर के कार्यों को गति देने के लिए दो मासीय विशेष परिव्राजक शिविर का आयोजन देव संस्कृति विश्वविद्यालय में किया गया। इस विशेष प्रशिक्षण में शिविरार्थियों को यज्ञीय कर्मकांड, योग प्रशिक्षण, एक्यूप्रेशर थेरेपी आदि जैसे प्रायोगिक कार्यशालाओं से विधिवत् प्रशिक्षित किया गया। समस्त स्वयंसेवक परिव्राजकों ने इस प्रशिक्षण के उपरांत 2 वर्ष के लिए सप्तभगिनी नाम से विश्वविख्यात भारत के पूर्वी राज्यों में समयदानी कार्यकर्त्ता के रूप में कार्यरत रहने का संकल्प लिया।

प्रशिक्षण प्राप्त करने के उपरांत समस्त परिव्राजकों ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति महोदय से भेंट कर शुभाशीष एवं मार्गदर्शन प्राप्त किया। ❑

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

बाह्य जगत् में प्रकाश

बाह्य जगत् के प्रकाशित होने का मतलब है—मानव जीवन का प्राणसंपन्न होना। बाह्य जगत् में मानव जीवन अकेला नहीं है। इसके साथ प्रेतों व पितरों का जीवन भी जुड़ा हुआ है। ये दोनों भी मनुष्य जीवन की कर्मफल-व्यवस्था के आधीन हैं। मनुष्य जीवन के बुरे कर्म और अधूरी इच्छाएँ—उसे प्रेतलोक पहुँचा देती हैं, जबकि जीवन में किए गए शुभ कर्म एवं परिवार के प्रति आसक्ति जीवात्मा को पितरलोक का वासी बनाती है।

मानव जीवन की व्यवस्था में इनके लिए आवश्यक कर्त्तव्य हैं। इन्हें पूरा किए जाने पर जीवन प्रेतों की छाया से मुक्त रहकर पितरों का आशीर्वाद प्राप्त करता है। यह बात समझने की है कि मनुष्य अपने आवश्यक कर्त्तव्यों को समझे, इन्हें पूरा करे। ऐसा न हो पाने पर प्रेतिक उपद्रव एवं पितरों का कोप ही पल्ले पड़ता है।

यदि हम जीवन की वर्तमान अवस्था एवं व्यवस्था को देखें तो हमारे चारों ओर यही हो रहा है। प्रेतिक उपद्रव का मतलब यह नहीं है कि हमें अपने आस-पास ये सब कहीं दिखाई देने लगें। इसका मतलब है—मन में मनोरोगों की छाया। मानव का अवसाद-विषाद, चिंता-अनिद्रा से घिरना। जीवन में भटकन।

यही वजह है कि आयुर्वेद शास्त्र में मानसिक चिकित्साशास्त्र को भूतविद्या भी कहा जाता है। इसके निराकरण का उपाय अपनी जीवनशैली को सुव्यवस्थित करना है। इसी तरह पितरों के कोप का अर्थ केवल इतना ही है कि हमारे अपने बड़े-बूढ़े हमसे नाराज हैं। उनके नाराज होने पर भला हमें उनका आशीर्वाद व आशीष कैसे मिलेगा? इसके परिणाम परिवार में कलह-वैमनस्य, संतानों के दुर्गुणी-दुराचारी होने के रूप में सामने आते हैं।

मानव, प्रेत एवं पितर—इन तीनों को प्रकृति ने एक ही व्यवस्था सूत्र से जोड़ रखा है। इनमें से प्रथम मानव कर्मप्रधान जीवन है। वह अपने शुभ कर्मों—सत्कर्मों से, कर्त्तव्यों के सही अनुपालन से अपने जीवन को उपलब्धियों, विभूतियों से भर सकता है और इस जीवन के बाद शुभ गति-सद्गति प्राप्त कर उच्च लोकों में प्रवेश कर सकता है। भारतदेश की संस्कृति इसी जीवन-व्यवस्था का उपदेश व आदेश देती है। मनुष्य जीवन में यदि भूलें हुईं, कुमार्ग-कुसंगति के कारण यदि कुकर्मों का सिलसिला चल पड़ा, तो फिर प्रेतलोक में इसका प्रायश्चित करना अनिवार्य हो जाता है। अपने प्रायश्चित को संपन्न करके जीवात्मा का जीवन पुनः शुभ कर्मों को करने के योग्य हो जाता है।

मनुष्य जीवन के बुरे कर्म और अधूरी इच्छाएँ—उसे प्रेतलोक पहुँचा देती हैं, जबकि जीवन में किए गए शुभ कर्म एवं परिवार के प्रति आसक्ति जीवात्मा को पितरलोक का वासी बनाते हैं।

पितरों के जीवन में शुभ कर्म तो होते हैं, पर साथ में आसक्तियों की भी बहुतायत होती है। इसी कारण से उसे ये आसक्तियाँ बार-बार संबंधों की ओर खींचती रहती हैं। उसे अपने परिवार से—परिजनों-स्वजनों से श्रद्धा-सम्मान की चाहत होती है। यह मिलने पर पितरलोक में वास करने वाली जीवात्माएँ उन्हें आशीर्वाद देती हैं और ऐसा न होने पर वे उनसे रुष्ट हो जाती हैं।

यह पितरों का रुष्ट होना, घर में-परिवार में बड़े-बुजुर्गों के नाराज होने जैसा ही है। उनकी इस नाराजगी से परिवार में खुशियाँ नहीं पनपतीं। परिवार में खुशियाँ बनी रहें, उनका आशीष हम पर बना रहे, बरसता रहे, इसीलिए हमारी सांस्कृतिक व्यवस्था में आश्विन महीने के कृष्ण पक्ष में प्रतिवर्ष पितरों के पूजा-तर्पण, पिंडदान आदि का प्रावधान कहा गया है। जिनके लिए संभव है, वे प्रतिमास की अमावस्या में भी यह पितर-पूजा संपन्न कर सकते हैं।

प्रेतों का प्रायश्चित विधान एवं पितरों के प्रति श्रद्धा-अर्पण का श्राद्ध विधान—दोनों मानव जीवन-व्यवस्था से जुड़े हैं। बाह्य जगत् के व्यापक वातावरण में इन तीनों का इसीलिए समावेश किया गया है। मनुष्य जीवन से जुड़ी इन दोनों अवस्थाओं एवं इनकी व्यवस्थाओं के संचालकों को भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता के दशम अध्याय में अपनी विभूतियाँ कहा है—उनके वचन हैं—'**पितृणामर्यमा चास्मि यमः संयमतामहम्॥**' (गीता 10/29)—पितरों में अर्यमा नाम का पितर एवं प्रेतों पर शासन करने वाला यमराज मैं हूँ। पुराणों के विवरण के अनुसार 'अर्यमा' पितरों की व्यवस्था करते हैं, उनका समुचित मार्गदर्शन करते हैं; जबकि 'यम' प्रेतों को अपने कठिन दंड विधान के साथ प्रायश्चित संपन्न करने का, उन्हें परिमार्जित-प्रक्षालित करने का सुअवसर देते हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता में एक अन्य स्थान पर अध्याय-9 के पच्चीसवें श्लोक में मनुष्य जीवन के निकृष्ट व श्रेष्ठ सूत्रों व उसकी गति का वर्णन करते हैं। इस प्रकरण में कहा गया है—

यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥

देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं। पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं। भूतों-प्रेतों को पूजने वाले इन्हीं भूतों-प्रेतों को प्राप्त होते हैं और मेरा पूजन करने वाले भक्त मुझको प्राप्त होते हैं।

इस विवरण पर तनिक गहराई से विचार करें, तो इस एक ही श्लोक में एक साथ अंतर्जगत्, सूक्ष्मजगत् एवं बाह्यजगत् की चर्चा है। अंतर्जगत् के सर्वोच्च तल से जुड़ने के लिए, उससे एकात्म होने के लिए हमें आत्मदृष्टि, आध्यात्मिक दृष्टि अपनानी पड़ेगी। यही पवित्रता, उत्कृष्टता का सर्वोच्च चेतना स्तर है। इसे ही परमात्मचेतना-ब्राह्मीचेतना कहते हैं।

पूज्य गुरुदेव ने समझाया कि मानव—पितरों को श्रद्धा व सम्मान दें, प्रेतों को उनके प्रायश्चित में सहायक बनें, देवों को अपने यज्ञ से पोषण प्रदान करें; परंतु समर्पण के भाव केवल परम चेतना परमात्मा में रखें।

यदि साध्य केवल सुख-साधन और स्वर्ग है, तो हम केवल देवपूजन तक संतुष्ट हो सकते हैं। इसके लिए केवल सूक्ष्मशरीर की सूक्ष्मदृष्टि चाहिए और यदि हमारी जीवनचेतना केवल पारिवारिक सुखों-संबंधों तक ही सिमटी हुई है, तो फिर केवल

पितर पूजन से काम चल जाएगा। इससे भी निम्न तल देह दृष्टि का है। क्षुद्रताओं, संकीर्णताओं व मलिनताओं में ही यदि हम अटक-भटक रहे हैं, तो फिर भूतों-प्रेतों के पूजन से काम चल सकता है। लेकिन इस यजन-पूजन में हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि जहाँ हमारी मति होगी, वहीं हमारी गति होगी। जहाँ हमारी चेतना जुड़ेगी, हम वहीं पहुँच जाएँगे।

बाह्यजगत् के प्रकाश के अभाव में मानव जीवन इन दिनों कुछ ऐसी ही क्षुद्रताओं-संकीर्णताओं व मलिनताओं में भटक रहा है। ईश्वर व अध्यात्म की तो किसी को सम्यक धारणा भी नहीं हो पा रही है। सामान्य जनों की कौन कहे, सिद्ध-चमत्कारी बनने के चक्कर में प्रवचन करने वाले-ज्ञानकथा कहने वाले महात्मा भी भूतों-प्रेतों-पिशाचों के पूजन में बहक-भटक रहे हैं।

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि ऐसों की दुर्गति होना स्वाभाविक है। उन्होंने अयोध्याकांड में भरत जी एवं माता कौशल्या के प्रसंग में कहा है—

जे परिहरि हरि हर चरन
भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि
जौं जननी मत मोर॥

—अयोध्याकांड-167

जो लोग श्रीहरि एवं भगवान शिव के चरणों को छोड़कर भयानक भूत-प्रेतों को भजते हैं। हे माता! यदि राम वनगमन में मेरी तनिक-भी सम्मति हो, तो विधाता मुझे उनकी गति दें।

आज बाह्यजगत् में फैला अंधकार मानव-जीवन को यही गति प्रदान कर रहा है। युगऋषि पूज्य गुरुदेव ने मानव को इस घोर दुर्गति से बचाने के लिए उसे गायत्री एवं यज्ञ की सौगात सौंपी है। उन्होंने धरा-धाम के प्रकाशस्रोत भगवान सूर्य के मध्य स्थित गायत्री चेतना में चित्त व चिंतन को स्थिर करने की बात समझाई।

उन्होंने समझाया कि मानव—पितरों को श्रद्धा व सम्मान दें, प्रेतों को उनके प्रायश्चित में सहायक बनें। देवों को अपने यज्ञ से पोषण प्रदान करें, परंतु समर्पण के भाव केवल परम चेतना परमात्मा में रखें। बाह्यजगत् में प्रकाश अवतरण के साथ सारी मानव जाति को उनकी यह बात समझ में आ सकेगी।

अभी जिसे केवल गायत्री परिवार के परिजन समझ पा रहे हैं, आने वाले समय में समूची मानवता उसे भली भाँति समझ सकेगी। बाह्यजगत् में प्रकाश का अवतरण पंचमहाभूतों को भी प्रकाशित व प्राणवान बनाएगा। ❑

पितर लोक ऊपर का ही लोक माना जाता है। यहाँ अवस्थित आत्माओं में सात्त्विकता का प्राधान्य होता है। उसी सत्त्वगुण का प्रकाश वे अपने संपर्क में आए सत्पात्रों को देते हैं। श्रद्धा-भाव रखने तथा श्रेष्ठ जीवन-क्रम अपनाए रहने पर उच्चस्तरीय पितर सत्ताएँ सचमुच ही महत्त्वपूर्ण सहयोग-अनुदान, प्रकाश-प्रेरणाएँ हैं; जो व्यक्ति एवं समाज के जीवन को सुख-सुविधाओं से भर देती हैं। उन पितरों की अपेक्षा यही रहती है कि इन उदार अनुदानों का दुरुपयोग न हो। पितरों को सच्ची श्रद्धा दी जाएगी, उन्हें तृप्त रखा जाएगा तो वे निश्चय ही शक्ति, प्रकाश, मार्गदर्शन, प्रेरणा, सहयोग एवं भावात्मक अनुदान देंगे।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान हेतु निभाएँ युगधर्म

किसी भी समाज एवं राष्ट्र का विकास सभ्यता एवं संस्कृति के संगम-समन्वय की पृष्ठभूमि में होता है। संस्कृति जहाँ मनुष्य के अंतरंग को विकसित करती है तो वहीं सभ्यता बहिरंग जीवन को सँवारती है। अंतरंग और बहिरंग के सम्मिलित स्वरूप से जीवन प्रगति-पथ पर अग्रसर होता है। व्यक्ति एवं समाज के उत्थान-पतन में इन दोनों की समन्वित भूमिका होती है।

संस्कृति मनुष्य की प्रकृति का निर्माण करती है, विचार एवं चिंतन को आधार देती है। वहीं सभ्यता से बाह्य जीवनशैली विकसित होती है। बहिरंग जीवन को शरीर, तो संस्कृति को प्राण की संज्ञा दी जा सकती है। कलेवर का स्वरूप कैसा होगा—यह अंतरंग के प्राणतत्त्व के ऊपर निर्भर करता है।

इस तरह सभ्यता जहाँ समाज का शरीर है, तो संस्कृति उसकी आत्मा। व्यक्ति अथवा समाज का स्वरूप व्यवहार एवं चरित्र कैसा होगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि जिस संस्कृति-परिवेश में वह साँस ले रहा है, इसका स्तर कैसा है?

सभ्यताओं के उद्‌भव, विकास एवं पराभव की घटनाओं में सांस्कृतिक मूल्यों की प्रधान भूमिका होती है। सभ्यताओं का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं होता। वे तो संस्कृति के अनुरूप ढलती, बनती तथा परिवर्तित होती रहती हैं।

स्पष्ट है कि सांस्कृतिक मूल्य ही समाज के मेरुदंड हैं—समाज को गढ़ने अथवा पराभव के गर्त में धकेलने में वे ही प्रधान कारक रहते हैं। मनुष्य का चिंतन और चरित्र संस्कृति के अनुरूप ही बनता है।

संस्कृति में जिस प्रकार के वैचारिक मूल्यों का समावेश होगा, व्यक्ति एवं समाज का वैसा ही स्वरूप होगा। वर्तमान समय में समाज के ऊपर दृष्टिपात करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि चारित्रिक दृष्टि से मनुष्य का पतन इतना पहले कभी नहीं हुआ।

चोरी, डकैती, हिंसा, बलात्कार, भ्रष्टाचार जैसे अपराधों में दिन-प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है। दैनिक पत्र-पत्रिकाएँ इन्हीं घटनाक्रमों से भरे रहते हैं। इनके मुखपृष्ठ इन्हीं से रँगे रहते हैं। उन्हें पढ़कर समस्त समाज के प्रति, मानव जाति के प्रति वितृष्णा-सी हो जाती है।

हर विचारशील आदर्श एवं सिद्धांतनिष्ठ व्यक्ति के मन में आक्रोश उभरता है, पर मात्र आक्रोश से, घृणा करने से समाधान नहीं निकलने वाला। उसके लिए समस्या की जड़ में प्रविष्ट होकर कारण एवं निवारण ढूँढ़ने होंगे, जो मनुष्य को अध:पतन की ओर अभिप्रेरित कर रहे हैं। इस दिशा में भौतिक एवं प्रशासकीय स्तर पर चल रहे अनेकानेक प्रयासों की विफलता सामने है।

यह समस्या एक राष्ट्र की न होकर विश्वव्यापी है। कानूनी कठोर दंड-व्यवस्था मानवीय पतन की रोक-थाम करने में अपनी असफलता व्यक्त कर रही है। पुलिस की सुरक्षा-व्यवस्था अपनी असमर्थता का रोना रो रही है।

इसी तरह राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक स्तर पर तमाम तरह के बाह्य उपचार अपना आंशिक ही प्रभाव दिखा पाते हैं, अंतरंग को स्पर्श कर उसे रूपांतरित करने की उनकी क्षमता सीमित रहती है।

इस स्थिति में बढ़ती हुई आग एवं छूत के संक्रमण के समान नैतिक पतन का रोग समाज के सांस्कृतिक अवमूल्यन का, नैतिक एवं वैचारिक पराभाव का बोध कराता है।

गहराई से विचार करने पर पता चलता है कि समस्याएँ व्यवहार की न होकर मूलतः संस्कृति की, विचार एवं चिंतन की हैं। अतएव बाह्य प्रकट होने वाले अनैतिक आचरणों में सुधार करने के लिए वैचारिक और सांस्कृतिक स्तर पर ही प्रयास करने होंगे।

कभी सभ्यता अविकसित थी, साधनों का अभाव था, पर मानवीय आस्था प्रबल होने के कारण समाज के प्रेरणास्रोत ऋषि अपने श्रेष्ठ विचारों से समाज को दिशा देते थे। ऋषि-परंपरा विलुप्त हुई। समाज आस्थावान कम, बुद्धिमान अधिक बना। फलतः वैचारिक अनुदानों के केंद्रबिंदु ने करवट ली। उसका स्वरूप भी बदला। त्याग, बलिदान, सेवा-परमार्थ, करुणा, दया, उदारता, चरित्रनिष्ठा से भरी आदर्शनिष्ठ संस्कृति का स्थान उपभोगवादी संस्कृति ने ले लिया।

बुद्धि ने नीति के स्थान पर अनीति को प्रोत्साहन दिया। वैचारिक अनुदान देने वाले विकसित साधनों ने भी बुद्धि से हाथ मिलाया। सबने एक स्वर में भौतिकवाद को, प्रत्यक्षवाद को महत्त्व दिया।

चिंतन और चरित्र को उदार एवं उदात्त बनाने वाली परोक्ष, किंतु महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक विचारधारा की उपेक्षा हुई। फलतः उपभोग की भौतिक संस्कृति ही आज समाज का आदर्श बन गई।

समाज के मेरुदंड कहे जाने वाले विचारवान, कलाकार, साहित्यकार, वैज्ञानिक, राजनेता सभी प्रबुद्धों ने एक स्वर में समर्थन दिया। चारित्रिक उत्थान की सैद्धांतिक बातें तो की गईं, पर व्यावहारिक स्तर पर रचनात्मक कार्यक्रमों में इस महती आवश्यकता को स्थान न मिल सका। फलस्वरूप समाजोत्थान के लिए मेरुदंड कही जाने वाली आदर्शों एवं सिद्धांतों से युक्त आध्यात्मिक विचारधारा उपेक्षित बनी रही, व्यावहारिक जीवन में न उतर सकी। सिद्धांत एवं व्यवहार में एकरूपता का अभाव ही चारित्रिक एवं नैतिक संकट का कारण बना।

समस्याओं की गढ़ बनी भौतिकवादी संस्कृति ने सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को बुरी तरह रौंदा है। अब आवश्यकता पड़ी है कि इस स्थिति में आमूलचूल परिवर्तन किया जाए। ऐसी संस्कृति का विकास करना, प्रसार करना, जो पदार्थ को नहीं, चेतना को महत्त्व दे।

जो वस्तुओं का उपयोग तो सोचे, पर उपभोग को तिरस्कृत करे। इसके लिए कई स्तर पर प्रयास करने होंगे। वर्तमान वैचारिक प्रवाह को उलटना होगा।

विश्वव्यापी नैतिक संकटों की वर्तमान स्थिति को देखते हुए अब आवश्यकता आ पड़ी है कि विचार एवं चिंतन शक्ति को नैतिक पुनरुत्थान में नियोजित किया जाए। यह कार्य आध्यात्मिक मूल्यों की प्रतिष्ठापना से ही संभव होगा। वर्तमान मानवीय चिंतन का ढर्रा है—जैसे भी बने अधिकाधिक उपार्जन, उपभोग करो।

स्पष्ट है वह नीति, अनीति, अपराध एवं अवांछनीयता को ही प्रोत्साहन देती है। प्रकारांतर से यह कहा जाए कि वर्तमान अनेकानेक भ्रष्ट आचरण एवं अपराधों में योगदान भौतिकवादी संस्कृति का है तो यह अत्युक्ति नहीं होगी।

अत: अंतरंग को विकसित करने वाली, चिंतन एवं चरित्र को उदार एवं उदात्त बनाने वाली आध्यात्मिक संस्कृति को ही विकसित करना होगा। जिसके लिए प्रत्येक विचारशील का योगदान अपेक्षित है, जो वर्तमान नैतिक पराभव को देखकर दु:खी हैं।

आज बुद्धिवाद का ही चारों ओर आधिपत्य नजर आता है। निरंकुश भौतिकवाद की बाढ़ अपनी चरम सीमा पर है। मनुष्य छोटा, बौना होकर सिकुड़ता चला जा रहा है। विलासिता के अतिरिक्त उसे कुछ सूझ ही नहीं पड़ता। दुष्प्रयोजन में निरत बुद्धि, चेष्टा और संपदा संसार में नारकीय वातावरण उत्पन्न करती चली जा रही है।

इसका परिणाम किस दु:खद दुर्भाग्य में होगा, उसकी कल्पना मात्र से सिहरन उठती है। जीवन और मृत्यु के निर्णायक चौराहे पर खड़ी मनुष्य जाति अपनी मनमरजी करती रहे और हम मूक दर्शक बने देखते रहें, यह उचित नहीं लगता। इतिहास साक्षी है कि विश्व की सर्वांगीण प्रगति में भारत ने अपने विकास के आरंभ से ही असाधारण योगदान दिया है।

इस देश के देव-मानव सदा से स्वयं को विश्व-नागरिक मानते रहे हैं और क्षेत्र विशेष की परिधि में अपने को सीमित न रखकर समस्त संसार की अवनति को प्रगति में बदलने के लिए भागीरथ प्रयत्न करते रहे हैं। इस देश में निर्वाह की समुचित सुविधाएँ रही हैं।

रत्नगर्भा शस्यस्यामला भारतभूमि के वरद्पुत्रों को कभी किसी प्रकार का अभाव-दारिद्र्य नहीं रहा, वे समस्त विश्व को अपना सेवाक्षेत्र मानकर सुदूर भूखंडों की अत्यंत कठिन यात्राएँ करते रहे हैं। इसे उन्होंने सदैव साधना माना तथा अविकसित पड़े भूखंडों के पिछड़ेपन को दूर करने के लिए अपने ज्ञान-विज्ञान का पूरा अनुदान-वरदान प्रदान किया।

वन्यजीवों जैसे जीवनयापन करने वाले मनुष्यों को उन्होंने कृषि, पशुपालन, शिल्प, व्यवसाय, परिवहन, शिक्षा, चिकित्सा, समाज-संगठन, धर्म-संस्कृति आदि से परिचित कराया और उन प्रगति प्रयासों से उन्हें अभ्यस्त बनाकर सुविकसित स्तर तक पहुँचाया।

ऐसे अनुदानों ने ही उसे संसार के कोने-कोने से जगद्गुरु का भावभरा सम्मान दिलाया। भारतवर्ष का चक्रवर्ती सांस्कृतिक साम्राज्य विश्व-वसुधा के कोने-कोने तक छाया था। यह सब इसलिए संभव हो सका कि यहाँ के निवासी सीमित क्षेत्र में अपने स्वार्थों को सीमित नहीं रखे रहे, वरन उन्होंने समस्त विश्व को अपना परिवार और सार्वभौम सुख-शांति को अपनी निजी प्रगति माना।

आज की स्थिति भूतकाल की अपेक्षा कहीं अधिक दुर्गतिग्रस्त है। संसार में कहीं चैन नहीं, शांति नहीं, संतोष नहीं। उद्वेग और संक्षोभ से आज मनुष्य जाति का प्रत्येक सदस्य बेतरह जल रहा है।

यदि आज हमारा चिंतन पूर्व की तरह परिष्कृत रहा होता तो निस्संदेह इस धरती पर स्वर्ग से कहीं अधिक संपन्नता और प्रसन्नता बिखरी पड़ी होती, किंतु हुआ उलटा ही। समृद्धि बढ़ी, पर सद्बुद्धि का लोप हो गया। विकास के स्थान पर विनाश का ही पथ प्रशस्त हुआ है।

हमारी स्वयं की परिस्थिति विपन्न होते हुए भी अपनी सांस्कृतिक धरोहर इतनी संपन्न है कि आज की स्थिति में भी विश्व का दार्शनिक क्षेत्र में नेतृत्व करने में सक्षम है। भारत का अध्यात्म इतना उत्कृष्ट है कि उसे किसी देश-जाति और काल की सीमा में नहीं बाँधा जा सकता, वरन सार्वभौम, सर्वकालीन और सार्वजनीन ही कहा जा सकता है।

भटकाव की सही राह पर लाने की उसमें पूरी क्षमता है।

ज्ञान-विज्ञान की समृद्ध परंपरा के आधार को जीवंत करते हुए हम विश्व को उत्कृष्ट स्तर का तत्त्वदर्शन दे सकते हैं। जीवन जीने की कला का व्यावहारिक प्रशिक्षण दे सकते हैं, जिससे भटकी हुई मानव जाति अपनी स्थिति एवं दिशाधारा पर विचार करे और दिशा-प्रवाह बदलने हेतु तत्पर हो सके।

भारतीय संस्कृति की महानता को देखते हुए विज्ञ समुदाय की यह राय दिन-दिन सुदृढ़ होती जा रही है कि अगले दिनों समस्त विश्व की एक समन्वित संस्कृति होगी और उसका निर्धारण देव संस्कृति के सिद्धांतों और प्रचलनों के आधार पर होगा।

ऐसी स्थिति में इस महान परंपरा के अनुयायियों का यह कर्त्तव्य बनता है कि वे न केवल उसके दर्शन, स्वरूप, व्यवहार आदि से सर्वसाधारण को परिचित कराएँ, बल्कि इस प्रकार की जीवनचर्या स्वयं भी अपनाएँ, जिससे सिद्धांत एवं व्यवहार, दोनों में एकरूपता आ सके। ❑

यूनान का राजा फिलिप अपनी न्यायप्रियता के लिए प्रसिद्ध था। वह अपने दरबार में स्वयं ही सारे मुकदमे सुनकर उनका न्याय किया करता था। एक बार राज्य के दो नागरिक उसके सम्मुख अपना मुकदमा लेकर पहुँचे।

राजा फिलिप उस दिन बेहद थके हुए थे। जब पहला व्यक्ति अपना पक्ष सुना रहा था तो उन्हें हलकी-सी झपकी आ गई। जब उन्हें चेतनता आई, तब तक दूसरे पक्ष की बारी आ गई थी। उन्होंने दूसरे पक्ष के बयान को ही संपूर्ण सच मानकर उसी के पक्ष में निर्णय सुना दिया। निर्णय सुनने पर पहले पक्ष का व्यक्ति बोला— ''महाराज! आपका निर्णय न्यायपूर्ण नहीं है। मैं चाहता हूँ कि आप मेरा बयान दोबारा सुनें; क्योंकि मेरे बयान को सुनते समय आपको नींद आ गई थी। मेरा पक्ष सुनने के बाद आप जो भी निर्णय करेंगे, वह मुझे स्वीकार होगा।''

उस व्यक्ति का बयान सुनने के बाद राजा फिलिप को अपनी भूल का एहसास हुआ और उन्होंने उसे उस पर लगे आरोपों से बरी कर दिया।

इसके बाद वे उससे बोले—''मैं तुम्हारे साहस से अत्यंत प्रभावित हूँ। तुम्हारे साहस ने ही आज तुम्हें न्याय दिलाया है और मुझे एक गलत निर्णय लेने से बचाया है। हर नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह राजा को ऐसी गलती करने से रोके, ताकि राजपद की गरिमा अक्षुण्ण रहे।''

अखण्ड दीप की जन्मशताब्दी

अखण्ड दीप से प्रेरित होकर, कार्य करें उत्थान का।
महाकाल की इच्छा से हम, कार्य करें निर्माण का॥

प्रज्ञा प्रखर-सजल श्रद्धानित, अखण्ड दीप में रहते हैं,
शुभ मनोकामना पूरी करते, कष्ट निवारण करते हैं,
गुरु की इच्छाओं पर चलकर, कार्य करें भगवान का।
महाकाल की इच्छा से हम, कार्य करें निर्माण का॥

लक्ष्य प्राप्ति की करें साधना, दृढ़ विश्वास बढ़ाएँ हम,
सत्कर्मों को धारण करके, स्नेह सद्‌भाव बढ़ाएँ हम,
उज्ज्वल भविष्य के लिए साथ दें, नियमित प्रज्ञा अभियान का।
महाकाल की इच्छा से हम, कार्य करें निर्माण का॥

जिससे हो कल्याण विश्व का, कार्य वही करते जाएँ,
सिद्धि-प्राप्ति के लिए तपस्या, प्रबल परिश्रम करते जाएँ,
शुचिता-समता भाव बढ़ाएँ, करें त्याग अभिमान का।
महाकाल की इच्छा से हम, कार्य करें निर्माण का॥

अखण्ड दीप की जन्मशताब्दी, गरिमापूर्ण मनाएँ हम,
श्रद्धा और समर्पण द्वारा, युगसाहित्य पढ़ाएँ हम,
ऋतंभरा की करें साधना, दीप जले सद्ज्ञान का।
महाकाल की इच्छा से हम, कार्य करें निर्माण का॥

—विष्णु शर्मा 'कुमार'

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

अखिल विश्व गायत्री परिवार - शान्तिकुंज, हरिद्वार

खेल प्रतिभा परिष्कार महोत्सव, 2024

उत्साह, उमंग एवं आत्मीयता विस्तार के लिए

22-23 मार्च, 2024

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-05-2024
Regd. N0. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP - 08/2024-2026

गुजरात एवं राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के परिजनों के मार्गदर्शन हेतु ज्योति कलश रथ यात्रा कार्यशाला

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel के वीडियो युग निर्माण मिशन के लिए समर्पित है! हमारा एकमात्र उद्देश्य परम पूज्य गुरुदेव के विचारों को जन-जन तक पहुंचाने का है।

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel को Subscribe करने के लिए क्लिक कीजिये और Bell 🔔 बटन को जरूर दबाएं ताकि आप को नोटिफिकेशन मिलते रहे। https://bit.ly/2KISkiz

◆ पूज्य गुरुदेव द्वारा साधकों को दिए गए दिव्य प्रवचन, अमृत वाणी, ध्यान साधना

▼ आराध्य द्वारा लिखित पुस्तकों पर वीडियो, अखण्ड ज्योति के आर्टिकल, अमृत ज्ञान

◆ परम वन्दनीय माता जी द्वारा गाए गए भावनाशील प्रज्ञा गीत जो कि पूज्य गुरुवर को समर्पित रहे

▼ परम श्रद्धेय जी द्वारा लिखित पुस्तक आध्यात्मिक जीवन पर आधारित वीडियो एवम् आदरणीय चिन्मय भैया जी के दिव्यता से भरे उद्बोधन

एक छोटा सा प्रयास सभी प्रियजनों को गुरु के ज्ञान का अमृत पहुंचाने का...आप भी इस अमृत के ज्ञान को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाने का प्रयास कर गुरुकार्य में भागीदार अवश्य बनें "!

आप इन वीडियो को डाउनलोड करके मिशन की गरिमा के अनुरूप प्रयोग कर सकते हैं। धन्यवाद

प्रस्तुत हैं शांतिकुंज ऋषि चिंतन चैनल पर

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel
Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

All World Gayatri Pariwar Official Social Media Platform

शांतिकुंज हरिद्वार के ऑफिशल व्हाट्सएप चैनल awgpofficial Channel को Follow करे

👇👇👇

https://whatsapp.com/channel/0029VaBQpZm6hENhqlhg453J

Shantikunj Official WhatsApp Number 8439014110

शांतिकुंज की गतिविधियों एवं ग्रुप से जुड़ने के लिए अपना नाम लिख कर WhatsApp करें

👇👇👇

https://wa.me/8439014110

Official Facebook Page:-

https://www.facebook.com/awgpofficial

Official Twitter:-

https://twitter.com/awgpofficial

https://twitter.com/DrChinmayP

Official Instagram:-

https://www.instagram.com/awgpofficial

https://www.instagram.com/shantikunjrishichintan

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

Official Telegram:-

https://t.me/awgpofficial

https://t.me/shantikunjrishichintan

Youtube Channel:-

https://yt.openinapp.co/nq7tt

https://www.youtube.com/c/RishiChintan

https://www.youtube.com/c/shantikunjvideo

AWGP Official Website

http://www.awgp.org/

http://literature.awgp.org

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel